गुरु-देव

भजन-गज़ल-प्रवाह

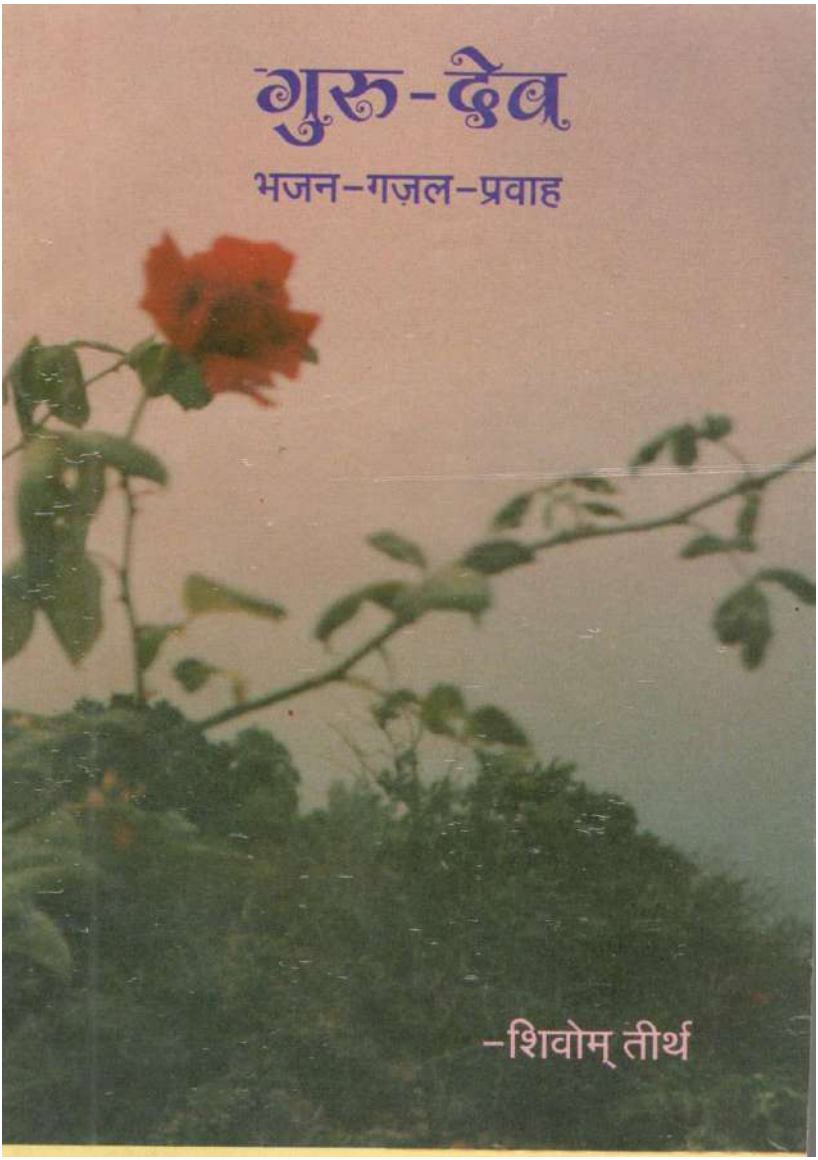

-शिवोम् तीर्थ

गुरूदेव

स्वामी शिवोम् तीर्थ

प्रकाशक

श्री नारायण कुटी संन्यास आश्रम,

देवास (म.प्र.) ४५५ ००१

पुस्तकें निम्न स्थानो से प्राप्त की जा सकती है।

- श्री नारायण कुटी संन्यास आश्रम, देवास (म. प्र.)
- स्वामी शिवोम् तीर्थ आश्रम मुकर्जी नगर, रायसेन (म.प्र.)
- स्वामी श्री विष्णु तीर्थ साधना सेवा न्यास
  ओल्ड पलासिया, जोबट कोठी, इन्दौर
- स्वामी शिवोम् तीर्थ कुण्डलिनी योग सेन्टर
  दुर्गा मंदिर, जिलाधीश परिसर, छिन्दवाडा (म.प्र.)
- स्वामी शिवोम् तीर्थ महायोग आश्रम
  खारीघाट (ग्वारी घाट) जवलपुर (म.प्र.)
- देवात्म शक्ति सोसाइटी
  ७४, नवाली गॉव, पोस्ट दहिसर (व्हाया मुंब्रा)
  मुंब्रा पनवेल मार्ग जिला ठाणे (महाराष्ट्र)
- योग श्री पीठ आश्रम शिवानंद नगर, मुनि की रेती ऋषिकेश (उ
- स्वामी विष्णुतीर्थ ज्ञान साधन आश्रम गन्नौर (हरियाणा)
- Swami Shivom Tirth Asharam
  1238 RT. 97
  Sparrow Bush N. Y.12780, U.S.A.
- नीलकंठ ग्राफिक
  ८१, आनन्द पूरा, नावेल्टी चौराहा, देवास (म.प्र.) : ७८३५६
- मृगनयनी प्रिंटिंग प्रेस
  ८६ महाराणी लक्ष्मी बाई मार्ग देवास : ७४२७१

भूमिका

गुरु की आवश्यकता एवं अनिवार्यता सभी सिद्धान्तों एवं शास्त्रों में सर्व मान्य है। गुरु कृपा प्राप्त कर, जीव को एक ऐसा सशक्त सम्बल प्राप्त हो जाता है, जिसके सहारे वह अपनी आध्यात्मिक यात्रा सुगमता-पूर्वक पूरी कर पाने में समर्थ हो सकता है । वह गुरु की सामर्थ्य पर ही आधारित है कि वह शिष्य के आध्यात्मिक उत्थान में कहां तक सहायक सिद्ध हो सकता है। यहां गुरु से तात्पर्य ऐसे गुरु से है जो शिष्य की अन्तरचेतना जाग्रत कर,उसे आन्तरिक अनुभूतियों का अनुभव करा सके, ऐसे गुरु को ही सद्गुरु कहा जाता है। समुद्र की लहरों की भांति ही, सभी दृश्यमान जगत तथा सभी जीवों के शरीर, प्रतिक्षण रुप परिवर्तित करते रहते हैं। नित्य तत्व एक मात्र चैतन्य ही है जो सतत् स्पन्दित होता हुआ, विभिन्न रुप धारण करता रहता है। वही चैतन्य तत्व ही सद्गुरु है क्योंकि वही जीव के अन्तर की अशुद्धि तथा मलीनता को दूर कर, आत्मिक प्रकाश प्रदान कर सकता है। जो गुरु स्वयं परिवर्तनशील जगत में स्थित है, वह शिष्य को भी नित्यता में क्योंकर स्थापित कर सकता है ? अतः गुरु का सत्-स्वरुपी नित्य तत्व में स्थापित होना आवश्यक है। जीव तो जगत में उलझा ही है, इस दलदल में से निकलने के लिए यदि वह हाथ पांव बहुत मारता भी है तो उसका अहंकार उसे कुछ कर नहीं पाने देता। उसके उपरांत यदि उसे गुरु भी अंधा ही प्राप्त हो जाए, तो दोनों ही गड्ढे में गिरते हैं। सद्गुरु की वाणी, दृष्टि, स्पर्श अथवा संकल्प चैतन्य रुपी गुरु से प्रेरित तथा उद्भूत होता है। वह शिष्य के चित्त तथा अन्तर-शक्ति को प्रभावित करता है। गुरु तत्व शिष्य में भी विद्यमान होता है किन्तु वह अपनी वासनाओं - विकारों से ऐसा प्रभावित रहता है कि उसे अपने अन्तर गुरु की अनुभूति नहीं हो पाती। वह अपने अन्तर में देख - झांक ही नहीं पाता। परिणामतः उसकी स्थूल इन्द्रियां तथा मन बाह्यमुखी ही बनी रहती हैं तथा वह जगत के नानात्व में ही खोया रहता है। यदि दैवयोग से उसे सद्गुरु की कृपा उपलब्ध हो जाती है तो उस जाग्रत-गुरु-शक्ति का अनूठा अवलम्बन प्राप्त हो जाता है। ऐसे ही सच्चे सद्गुरू के बारे में यहां कहा गया है :-

"गुरू वाणी भव बंधन काटे।
अमृत रस जो पान करे है, ताकी दुविधां नाठे ।।
सीधे जात है हृदय गगन में, नाशे मल माया को।
निर्मल हिरदय, प्रेमभाव मन, कर्म सभी ही फाटे

यह वाणी है अजब अनूठी, पार न इसका कोई।
माया परदा दूर करे है, हरदम झलक विराटे ।। २ ।। "

गुरू वाणी, चाहे मन्त्र के रूप में हो, या उपदेश के रूप में, अथवा गुरु डांट-फटकार ही क्यों न हो, प्रत्येक अवस्था में, शिष्य के कल्याण का भाव ही निहित है। यह गुरु के वासना - रहित हृदय से प्रस्फुट होती तथा शुद्ध चैतन्य की मंगलकारी क्रिया होती है। यदि शिष्य भी उसे खुले हृदय से ग्रहण करता है, तो वह उसके हृदय के अन्तर स्थल तक नीचे उतर जाती है। उसके हृदय एवं जीवन को बदल डालने का अति दुष्कर कार्य सम्पन्न करती है। जन्म-जन्मातर एंव युग-युगान्तर के, न जाने कब कब की संचित पाप राशि को चित्त से धोकर, भव से पार कर देती है। जो भी शिष्य, अमृतमयी इस गुरुवाणी का पान करता, विचार एवं मनन करता, तथा उसे अपने जीवन में धारण करता है, उसके न जाने कब कब के, काई की तरह पुराने जमें हुए संस्कार नष्ट हो जाते हैं। इस महान कार्य को चेतन रुपी अन्तर गुरु ही कर सकते हैं, जीव अपना कितना भी प्रयत्न कर ले, सफल नहीं हो पाता।

गुरु के वचन, बाण की भांति, सीधे हृदय गगन को जाकर बीध देते हैं। हृदय गगन, हृदय का वह स्तर है, जो वासनाओं से अतीत शुद्ध चेतन का देश है। मानसिक संकल्प-विकल्प सब मन का ऊपरी स्तर है। गगन-स्तर अन्तर मन से भी परे है, जिसमें शुद्ध चेतन लीला करता है। उसे बींधने के लिए वासनाओं तथा विचारों को पहले पार करना पड़ता है, उन्हें समाप्त करके ही गगन तक पहुंचा जा सकता है, जिस प्रकार बाह्याकाश में पक्षी उड़ते फिरते हैं उसी प्रकार अन्तर गगन में कल्पनाओं, वासनाओं एवं इच्छाओं की भी उछल कूद होती रहती है। यह सभी उड़ान मन की बहिर्मुखता की द्योतक है। गगन बींधने का अर्थ कल्पनाओं रूपी पक्षियों को मारकर, मन को अन्तर्मुखी गगन में स्थित कर दिया जाये। तब माया, जिसके कारण, जगत अपने से भिन्न दिखाई देता है, निवृत्त हो जाती है। मन में प्रभु के प्रति प्रेम तरंगे मारने लगता है। सच पूछा जाय तो प्रभु के चरणों में प्रेम ही एक मात्र साधन है जो जगत के प्रति वैराग्य हुए बिना सम्भव नहीं।

जगत में मुख के माध्यम से प्रकट होने वाली सभी वाणियां, जगत के मिथ्या विषयों का ज्ञान कराने वाली हैं किन्तु गुरुवाणी उस अलौकिक तत्व का

ज्ञान कराती है जिसे बुद्धि से प्राप्त किया ही नही जा सकता । जिसे समझा नहीं जा सकता, उसे समझा देती है, जिसे देखा नहीं जा सकता, उसे दिखा देती है, तथा जिसे अनुभव नहीं किया जा सकता, उसे अनुभव करा देती है। वास्तव में तो गुरुवाणी मन तथा इन्द्रियों को प्रभावित करती ही नहीं, अपितु उनके आधार पर कार्यशील शक्ति को उभारती, उछालती तथा अन्तर्मुखी करती है, जिससे मानसिक शक्ति का ह्रास नहीं, विकास होता है । मन में जितनी वासनाएं अधिक होती है, उतना ही मन दुर्बल होता है । वासना युक्त मन, उसकी अस्वाभाविक अवस्था है । अस्वाभाविकता सदैव ही दुर्बलता उत्पन्न करती है, अतः गुरुवाणी इस अर्थ में अनूठी तथा निराली है कि वह मन को उसकी स्वाभाविक अवस्था में ला देती है। स्वाभाविक का अर्थ है वासना विहीन मन । तब मन के संकल्प वासनयुक्त नहीं होते अपितु ज्ञान-युक्त स्वाभाविक हो जाते हैं ।

फिर तो जगत दिखाई भी देता है तो उसका नाम रुपात्मक स्वरुप गौण ही । वह प्रभु की चेतन सत्ता की लीला मात्र ही रह जाता है जिसे केवल धर्म कार्य करते हुए, अपना चित्त शुद्ध करने के लिए ही, जीव को यहां भेजा जाता है। यहां आकर जीव इसी में रम जाए तो जीव की इच्छा । अन्यथा जगत तो धर्म क्षेत्र, कुरुक्षेत्र है । यह भाव गुरुवाणी से चित्त में उदय होता है। अन्यथा तो जीव दीर्घकालीन सतत् साधना से भी मन की अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता ।

गुरु-वाणी केवल मौखिक वाणी मात्र नहीं, शुद्ध तथा निर्मल मन की शक्ति क्रिया है जो वाणी के रूप में प्रकट होती है। गुरु के मन में कोई लोभ, भय अथवा वासना नहीं होती । होता है केवल शिष्य के कल्याण का भाव। वह उसके मानसिक विचार नहीं, मन की मौज होती है । गुरु की चित्त शक्ति, शिष्य की चित्त शक्ति को प्रभावित करती है । शक्ति की क्रिया बदल जाती है। शिष्य का व्यक्तित्व, विचार, व्यवहार सब बदल जाता है । उसे जगत में गुरुशक्ति ही सर्वत्र व्याप्त एवं कार्यशील अनुभव होने लगती है । किन्तु गुरु के समर्थ होने के साथ साथ शिष्य का भी अधिकारी होना आवश्यक है । अन्यथा रेत में घी डालने के समान कभी मिठाई नहीं बनती। उलटे घी की हानि होती है ।

“मस्तक हाथ रखा गुरुदेवा, मैं आनन्द मनाया
सीमाएं सब मेरी टूटीं, मैं था जग भरमाया

ऊंच नीच कुछ न मैं जानूं, क्या जानूं गुरुदेवा
बस किरपा उसकी जानूं, जग का रूप दिखाया
जा किरपा गुरुदेव की होवे सकल मनोरथ पूरे
करे विहार गगन में फिरता, जिन ने बन्द खुलाया
अब तो मनवा चेतन बनया, राग द्वेष सब भागे
गुरु ने जड़ को चेतन कीना, चेतन दर्श कराया
संग नाव जा लोहा तिरता, गुरु संग शिष जैसे
सतगुरु किरपा भयी अनोखी, भव को पार कराया"।। १६ ।।

इस पद्य में गुरु-दीक्षा का वर्णन है। गुरु-दीक्षा में प्रायः शिष्य के मस्तक पर गुरु द्वारा हाथ रखा जाता है, यद्यपि मानसिक संकल्प भी साथ रहता है। अन्यथा हर किसी के माथे पर हाथ रख देने से गुरुदीक्षा नहीं नहीं हो जाती। कुछ गुरु मन्त्र सहित दीक्षा देते हैं, कई दृष्टिपात करते हैं तो कुछ केवल संकल्प करते हैं । किन्तु सबके अन्तर में शिष्य के कल्याण का भाव रहता है।

गुरु-दीक्षा आन्तरिक साधना का आरम्भ है। आनन्द की अनुभूति तथा द्रष्टा भाव का उदय तो हो जाता है किन्तु व्यष्टि चेतना की सीमाएं टूटने में समय लगता है। शक्ति के अपने से भिन्नत्व की अनुभूति से साधन आरम्भ होता है जो कि समष्टि चेतना की अनुभूति का मार्ग खोल देता है। अन्यथा जीव जगत में भ्रमित होकर ही भागता फिरता है। ऊंच-नीच, गुणी-अवगुणी, धनिक-निर्धन तथा स्वरुपता - कुरुपता के मिथ्या तथा अहंकार – जनित विचारों में ही डूबा रहता है। आरम्भ में ही उसे गुरु-शक्ति का पूर्ण परिचय तो प्राप्त नहीं जाता, किन्तु इतना अवश्य अनुभव हो जाता है कि उसके मन तथा इन्द्रियों से भिन्न कोई सत्ता है जो मन के संकल्प से स्वतंत्र है। अभी वह गुरु को नहीं जानता, केवल गुरु कृपा की झलक पा जाता है। गुरु-दीक्षा से आन्तरिक शक्ति प्रत्यक्ष हो जाने तथा उसकी आनन्द-दायी क्रियाओं की अनुभूति हो जाने के पश्चात् जगत की असारता एवं क्षण भंगुरता प्रत्यक्ष होने लगती है। यद्यपि अन्तर की संचित वासनाएं फिर भी मन को बहिर्मुखी बनाए रखने में प्रयत्नशील बनी रहती हैं किन्तु साधक-शिष्य को गुरुकृपा का एक ऐसा सम्बल प्राप्त हो जाता है जिसके सहारे, वह बहिर्मुखता पर सुगमता से पार पा सकता है।

गुरुकृपा प्राप्त हो जाने पर, शिष्य की सभी कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं अर्थात् वह पूर्णकाम हो जाता है अर्थात् उसकी कोई कामना (जागतिक) रहती ही नहीं। वास्तव में साधक की एक ही कामना होती है आत्मस्थिति की प्राप्ति। आत्म स्थिति के पश्चात् यह कामना पूर्ण हो जाती है तथा अन्य कोई कामना उदय नहीं होती। जगत की कामनाएं कभी पूरी होती ही नहीं। एक पूरी होने पर दूसरी उठ खड़ी होती है। इसीलिए जगत की कामनाओं को अशुद्ध कहा जाता है। अशुद्धि कभी शुद्ध नहीं होती। आत्म स्थिति की कामना शुद्ध है। पूरी हो जाने पर निवृत्त हो जाती है। फिर तो साधक आन्तर् चैतन्य रुपी गगन में आनन्दपूर्वक विहार करता है। न कोई शोक, न मोह। न कोई जगत कामना का दुख, तथा न ही मन की चंचलता। उसे नित्य तत्व का आनन्द-दायक अनुभव हो जाता है। अन्तर् गगन का यह प्रवेश गुरु- कृपा से ही खुलता है। इसी से साधन क्षेत्र में गुरु का इतना महत्व है।

राग-द्वेष ही जगत है। जिस चित्त में राग-द्वेष नहीं, उसके लिए जगत का महत्व समाप्त हो जाता है। अन्तर चैतन्य रुपी गगन में भला राग-द्वेष का क्या काम ? सच पूछा जाए तो राग-द्वेष समाप्त हुए बिना गगन प्रवेश सम्भव ही नहीं। जब साधक को अपने अन्तर में चैतन्य दीखना अनुभव होने लगता है तो बाहर भी दृश्यमान जड़त्व विलीन होकर, सर्वत्र चैतन्य ही दीखने लगता है। माया का आवरण चित्त पर आच्छादित है। माया युक्त चित्त से जगत को देखा जाएगा, तो सर्वत्र जड़ता ही दीखेगी। यदि चैतन्य चित्त से जगत को देखा जाएगा, तो जगत में भी सर्वत्र चैतन्य ही दिखेगा।

यह सब गुरु शक्ति की अन्तर जाग्रति, उसकी सतत् क्रिया शीलता तथा साधक के उसके प्रति सम्पूर्ण समर्पण भाव के बिना सम्भव नहीं। यह सिद्धान्त कहने में बड़ा सरल है परन्तु इसको कर पाना अत्यन्त ही कठिन है। जब अन्तर के संस्कार जोर मारते हैं, तो गुरु शक्ति की प्रत्यक्ष अनुभूति होने पर भी, साधक लुढ़क जाता है, तथा साधन से विमुख हो जाता है। फिर भी सामान्य साधक की अपेक्षा शक्ति सम्पन्न साधक का मार्ग अपेक्षाकृत सरल होता है।

इस प्रकार, गुरु तत्व तथा गुरुदेव पर कितने ही पद लिखे हैं। सरसरी तौर पर पढ़ने पर, उनका गूढ़ रहस्य प्रकट नहीं हो पाता किन्तु तनिक विचार करने पर उनका भेद खुलता जाता है। जैसे-

"खोजत फिरा शिवोम् जगत में, तेरा पता न पाया
मिला तो मिला तू अन्तर माहीं, विरथा समय गवाया
जग के कण-कण में तू व्यापक, आवे नज़र कहीं न
जब तक दीखे अन्तर नाहीं, बाहर किसे न पाया " - उद्बोधन

बाहर जगत में वृथा ही भटकता फिरा, जबकि गुरुदेव अन्तर में ही विराजमान थे। कैसी विडम्बना है, पास होते हुए भी जगत में, तीर्थो में, मन्दिरों में, प्राकृत सौंदर्यों में तथा सत्संगों में गुरुदेव को खोजता रहा। ठीक ही तो है, जब तक अन्तर का आवरण उतर नहीं जाता तथा उसकी अप्राप्ति की भ्रान्ति अन्तर में निवृत हो जाती, वह बाहर दिखाई दे भी कैसे सकता है ?

भगवान तथा गुरुदेव के ऐक्य पर लिखा है-

"पार ब्रह्म है सद्गुरुदेवा, तुरिय ब्रह्म ही सद्गुरुदेवा
सर्व विधाता सद्गुरुदेवा, जगत बनाए सद्गुरुदेवा
सब प्रपंच है लीन उसी में, भोगे विविध प्रकारा
भोग भोगता रहे निआरा, ऐसा सद्गुरुदेवा
सब प्रपंच है लीन उसी में, यही प्रसुप्तावस्था
न कुछ भी, फिर दिखे दिखाए, ऐसा सद्गुरुदेवा "//५//

तुरीय, जाग्रत, सुषुप्ति तथा स्वप्न, सब गुरुदेव की ही भिन्न भिन्न अवस्थाएं हैं। अपने स्वरुप में स्थित उसकी तुरीय अवस्था है। जगत के भोग भोगते हुए भी वह न्यारा बना रहता है, यही उसकी जाग्रत अवस्था है, प्रलय काल में जब सारी प्रकृति उसमें समाई होती है, यही है उसकी प्रसुप्तावस्था है। सृष्टि काल में वह अपने अन्तर में ही अपनी माया की लीलाएं निहारता रहता है,यही उसकी स्वप्नावस्था है। अर्थात भगवान ही गुरुदेव है। वही जीवों पर कृपा करके उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

अब देहधारी गुरु की आन्तरिक स्थिति का वर्णन देखें –

' वीतराग भय क्रोध हुए जन जग बंधन से छूट गए
माया आवरण उतारे, शोक मोह सब दूर हुए
ज्ञान तपस्या है यह साधन, मुक्त करे सब जीवों को
भक्ति ज्ञान की नाव पकड़ कर, गहरा सागर कूद गए
जब तक नाव मिले न जन को, अपरम्पार नहीं मिलता
गुरुकृपा से ज्ञान तपस्या, गुरु-कृपा से पार पए ।। ६ ।।

ऐसा वीतराग गुरु ही, शिष्य का कल्याण करने में समर्थ हो पाता है। इसके विपरीत-

डूबनहार होय नदिया में, दूजे पार लगावत नाहीं
जो अंधा हो, देखत नाहीं, दूजे पार लगावत नाहीं
मतवाला जो प्रभु प्रेम का, वह ही मारग राम बताए
डूबत देत नहीं को, जग में वह भरभावत नाहीं ॥८॥

इस प्रकार गुरुदेव के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है । गुरु कृपा से जाग्रत, अन्तर उदभूत क्रियाओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

"जब चली सुरतिया ऊपर को, तब लीला अजब वह है करती
गरजे तरजे और नाद करे, परकाश अनेकों वह करती
है दिव्य ही भाव करे परगट, मन में आनन्द है छा जाता
प्रेम प्रकट मन के अन्दर, अन्तर आलोकित वह करती
शक्ति चालन कम्पन होता, अश्रु हैं भरते नयनों में
है बिना किए सब कुछ होता, निर्मल है मन को करती //२३//

गुरुशक्ति अन्तर में जाग्रत तथा क्रियाशील होकर, चित्त-वृत्ति को आत्माभिमुखी, ऊपर की ओर यात्रा आरम्भ कर देती है। मार्ग में कई प्रकार की बड़ी ही विचित्र लीलाएं करती है । गरजन, तरजन, कई प्रकार के नाद, अनेकों रंग तथा प्रकाश, दर्शाती हुई आगे बढ़ती जाती है। कभी ऐसा प्रतीत होता है कि

हम गिरे जा रहे हैं तो कभी आकाश की ऊंचाइयों को छूने लगते हैं। कभी मन में विकार उभर आते हैं तो कभी सद्गुण। यह सब भगवती की विभिन्न लीलाएं ही हैं। मार्ग के इन अनुभवों का आधार चित्त के संस्कार ही होते हैं, जिन्हें भगवती अपनी क्रियाओं से करती तथा मन को निर्मल बनाती है। जैसे जैसे संस्कारों का बोझ हल्का होता जाता है, माया का आवरण क्षीण होता जाता है, वैसे ही अन्तर में विद्यमान आनन्द, प्रकाश तथा प्रेम का भाव उभरता जाता है। यह बात एक पुनः स्पष्ट कर दें कि इसके लिए, गुरु कृपा, सतत साधना, समर्पण भावना तथा सद्कर्मो की आवश्यकता अनिवार्य है, अन्यथा साधक, साधन की प्रारम्भिक अवस्था में ही भटकता रह जाता है।

विरह

विरह साधन का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अंग है। जब हृदय में प्रभु मिलन की उत्कट तड़प न हो साधन की निरन्तरता संदिग्ध बनी रहती है। मीरा, कबीर तथा सहजो जैसे सन्त कवियों की वाणी में विरह को विशेष स्थान प्राप्त है। विरह तथा पश्चाताप के भाव हमारे मन को भी बहुत छूते है। जहां पश्चाताप में मन बीते समय की वृथा चेष्टाओं का स्मरण कर सिहर उठता है, वहीं विरह भाव से हृदय में मीठा-मीठा दर्द पैदा होने लगता है। जीवन में सभी सुख-सुविधाएं उपलब्ध होने पर भी, प्रभु के दर्शन का अभाव खटकता रहता है। तड़प का आनन्द एक ऐसा आनन्द है, जिसमें सदैव तड़पते रहने का मन होता है। तड़प को जितना अन्तर में संभाल कर रखो, उतनी ही बढ़ती है। अन्तर में हृदय वियोग की पीड़ा से धधकता हो, किन्तु चेहरे पर शिकन के कोई भी चिन्ह न हो, तो ही साधक अन्तर पीड़ा का आनन्द उठा पाता है। देखिए:-

"याद प्रभु में नयनां बरसें, रिमझिम रिमझिम रिमझिम
बना प्रवाह निरन्तर रहवे, रिमझिम रिमझिम रिमझिम
आहें भरुं याद में तेरी, तड़प कलेजा जाता
छाया प्रभु हृदय के माहीं, रिमझिम रिमझिम रिमझिम
रात दिवस मैं घूमत रहती, चैन न पल भर मोहे
ऊठत बैठत नाम तेरा ही, रिमझिम रिमझिम रिमझिम ॥३४॥

नयनों से अंसुअन की झरी लगी ही रहती है, परन्तु प्रेमी भक्त किसी को दिखा भी तो नहीं सकता। विरह के आंसू हृदय में ही समेट कर रह जाता है। जन-समुदाय में अपना चेहरा प्रफुल्लित बनाए रखने की चेष्टा करता रहता है। कभी अन्तर में तो कभी बाहर, प्रवाह बना ही रहता है। प्रभु की याद में आहें भरता है, सिसकता है, तड़पता है, किन्तु मुंह से उफ तक नहीं निकालता। मन मसोस कर जाता है। उसके हृदय पटल पर, हर समय प्रभु ही रहता है। रात को प्रेमी की आंखों में नींद नहीं। तारे गिन गिन कर रैन व्यतीत करता है, करवटें बदलता रहता है, पर सो नहीं पाता। पल भर के लिए भी तो उसे चैन नही मिलता। हृदय में वियोग की ज्वाला धधकती रहती है। यही निरन्तर प्रेम की अग्नि उसका साधन होती है। वास्तव में साधन है भी यही। शरीर को कष्ट देना, सांस को रोकना, यात्रा के दुख सहन करना, सब प्रेम के बिना वृथा है। प्रेम का वृक्ष जब बड़ा हो जाता है तो उसकी शाखाएं चारों ओर फैल जाती है। किन्तु प्रेम छिप भी नहीं पाता, लाख छिपाने पर भी प्रकट हो ही जाता है। समझने वाले समझ जाते हैं, किन्तु संसार उन्हें पागल कहता है। प्रेमी भक्त को इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। कोई कुछ भी कहे, वह अपने अन्तर प्रेमानन्द में मगन रहता है।

"प्रेम छिपाय नीर छिपत है नाहीं
नयनन नीर बहत है अविरल, भाव रहत मन माहीं
मुंह से बोलत है कुछ भी न, नयन प्रकट कर देते
ऊठत बैठत आह भरत है, छिपत प्रेम है नाहीं
खोजत रहत सतत् प्रियतम, मिथ्या जग के भीतर
प्रियतम प्यारा कहां छिपो है, माया भ्रम के माहीं"।। २६ ।।

प्रेम भला छिपाए कहां छिपता है। कोई हृदय में छिपा कर रखना भी चाहे तो नयन सब प्रकट कर देते हैं। संसारी चाहे उसे न समझ पाएं किन्तु प्रेमी जन तो अन्दर के प्रेम को भांप ही लेते हैं। ऐसे प्रेमी को वह अत्यन्त सौभाग्य शाली मानते हैं। पहले तो प्रेमी प्रभु को बाहर जगत में खोजने के लिए प्रयत्नशील रहता है किन्तु नाम रुपात्मक मिथ्या जगत में नित्य एक रस प्रभु कहां ? तब थक-हार कर प्रेमी भक्त अन्तर की ओर उन्मुख होता है। जब प्रभु की कृपा नहीं होती तो भक्त पुकार उठता है :-

"न तरसाओ बालमा, मैं तो प्रेम दीवानी
दर्स तेरे की भूखी हूं मैं, करत रही नादानी
कण कण तुमरा वासा, पालक अन्तर्यामी
मेरे मन को हो तुम जानत, हूं मैं निपट अज्ञानी
पड़ी जगत में गोते खाऊं, राह तुम्हारा भटकी
क्रोध लोभ भवसागर डूबी, बनत रही अभिमानी " //३३//

हे प्रभु ! हे प्रियतम ! अब मुझे और क्यों तरसाते - सताते हो ! मुझे तुम्हारे दर्शन को छोड़कर, अन्य कोई तृष्णा नहीं। अब तक मैं नादान बनी बाहर जगत में मारी - मारी फिरती रही। अन्तर की ओर प्रवेश किया तो अहंकार साथ हो लिया। अहंकार युक्त मन को तुम्हारी प्राप्ति होती तो कैसे ? तुम जगत में सर्व व्यापक हो, सबके हृदय की बात से पूर्ण रुपेण अवगत हो। मेरे हृदय की बात भला से क्यों कर छिपी रह सकती है। मैं तो निपट अज्ञानी हूं, किन्तु मन में तुम्हारे मिलन की चाह लिए हूं। अभिमानी तथा भव सागर में डूबी हूं तो क्या हुआ। तुम्हारे लिए यह कौन सा कठिन कार्य है। तुमने तो अनेकों को पार किया है। हे प्रभु मेरी भी सुध लो।

जब फिर भी भगवान भक्त की पुकार नही सुनते तो भक्त अपने बीते हुए, विषय-वासना से व्यतीत हुए, दिनों की याद कर पश्चाताप करता है। वह समझता है कि उसका मन अभी इस योग्य नहीं कि उस पर प्रभु की कृपा हो। वह प्रभु को नहीं, अपने दोषों को दोष देता है। इसी उधेड़बुन में जीवन की अवधि व्यतीत होती जा रही है। वह कह उठता है :-

" सोचत सोचत घबरावत हूं
जब हूं देखत दिनन को बीतत, हिरदय अकुलावत हूं
गईं बहारें, रुत भी बदली, सावन आए जाए
मैं हूं मूढ़ बनी विषयन में, समझ नहीं पावत हूं
यौवन बीता, अन्तिम बेला, उमरिया जात विहाय
मैं हूं रही जगत में लागी, छीजत मैं जावत हूं ।। ३६ ।। "

प्रभु, कब कहां, कैसे मिलेंगे, यही सोच-सोच कर मन में घबराहट होती है। एक ओर मन में प्रभु मिलन की चिन्ता है, तो दूसरी एक -एक करके जीवन के दिन व्यतीत होते जा रहे हैं। हृदय में एक हूक सी उठती है। बहारें आती हैं, चली जाती हैं, ऋतु परिवर्तन होता रहता है, श्रावण के बादल आते हैं तथा बरस के चले जाते हैं, किन्तु मैं अभी तक समझ नहीं पाई कि प्रियतम को कहां, कैसे प्राप्त करना है ? वैसे तो भक्त को, भगवान को प्राप्त करना ही नहीं हैं, केवल भगवान की कृपा प्राप्त करना है। किन्तु भगवान कैसे प्रसन्न हों, कैसे रीझें, यही भक्त की चिन्ता है। भक्त अपनी मूढ़ता से अवगत होता है। यौवन व्यतीत हो गया, जब इन्द्रियों में बल था, वह समय विषय-भोग में बिता दिया। अब तो अन्तिम वेला सामने आ खड़ी है, किन्तु मेरा लक्ष्य अभी भी जगत की ओर ही बना हुआ है। किन्तु समर्पण युक्त भक्त प्रभु प्रसन्नता की चिन्ता नहीं करता, उसके लिए प्रभु कृपा सदैव ही बरसती रहती है। सुख में भी और दुख में भी। प्रभु कभी अकृपालु होते ही नहीं। भक्त के पाप-कर्मों को शुद्ध करने के लिए उससे कई प्रकार के प्रारब्ध-भोग भुगवाते हैं। इस हेतु भक्त की चित्तशुद्धि कर, उसे कृपा प्राप्ति के योग्य बनाना होता है। प्रेमी भक्त भगवान से कुछ याचना नहीं करता। भगवान की वियोगाग्नि में जलते रहने में उसे आनन्द है। प्रभु-दर्शन दें, तो उनकी मौज, नहीं देना चाहें तो वियोग तो में जलने का सुख है ही। फिर भला उसे चिन्ता किस बात की। उसका प्रभु कृपा-सागर है। उसकी अहैतु की कृपा सभी जीवों को, सभी जगह, सभी समय प्राप्त होती रहती है। यह अलग बात है कि कोई उसकी कृपा समझ न पाए।

विनय

विनय में प्रेमी अपने आपको दीन-हीन, पापी, पाखण्डी, दम्भी मान कर, प्रभु से कृपा की याचना करता है। वह प्रभु के सामने स्वीकार करता है कि उसने सब दुष्कर्म ही किए हैं, समय का दुरुपयोग किया है। धर्म-अधर्म तथा उचित-अनुचित के विवेक से हीन बना रहा है। उसमें सभी अवगुण हैं किन्तु प्रभु को दयावान मान कर, उसकी शरण ग्रहण की है। वह प्रार्थना करता है।

"हे प्रभु" आप तो सम-दृष्टि हैं। पापात्मा पुण्यातमा आपको एक समान प्रिय हैं। मेरे अवगुणों की ओर लक्ष्य न दें। मुझे अपना बालक जान कर मुझ पर कृपा करें। मैं जैसा कैसा हूं, हूं तो तेरा ही । "

मैं पापी गुणहीन अजाना, तेरा पता न पाया
विषयन माहीं उमर गवाई, कुछ भी हाथ न आया
तू अनन्य है अलख अगोचर, तू है दीन दयाला
जिस पर किरपा तेरी होवे, जान तुझे वह पाया
मनवा जाये जग भोगों को, भटक भटक दुख पाए
तम में डूबा, अंधकूप में, माया में भरमाया "

मैं पूरी तरह पाप में लिप्त हूं, तनिक भी मेरे में कोई सदगुण नहीं । भ्रम तथा मोह - माया में डूबा हुआ अज्ञानी हूं। तेरे बारे में मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं पूजा, जप, साधना योग कुछ भी नहीं जानता । मुझे जगत के विषय भोग की ही ललक है, उसी में ही मैंने सारी आयु वृथा ही नष्ट कर दी है किन्तु फिर भी जगत में मुझे कभी भी सुख प्राप्त नहीं हुआ ।

हे प्रभु ! तू तो अपरम्पार है, आदि - अन्त से रहित है। मैं सीमित बुद्धि तुम्हें भला जान भी कैसे सकता हूं । इसलिए, मेरे लिए, तू अगोचर ही है । परन्तु तेरा एक गुण मेरे गिरे हुए मन को ढारस बंधाता है कि तू दीन दयाल है। मैं विषयी तथा पापी होते हुए भी, दीन बनकर तेरी शरण आया हूं। इसलिए हे प्रभु, मुझ दीन ही पर दया करो । तेरी कृपा के बिना तुझे कोई भी जान नहीं सकता । यह तेरी मौज है कि तू कृपा कर, अपने आपको दीन – भक्तों के समक्ष प्रकट कर देता है । अन्यथा मन तो सदैव भोगों के पीछे भागने में ही लगा रहता है, भटकता रहता है, भटकता रहता है, जगत में ही खोया रहता है । विषय भोग से कभी भी जी भरता ही नहीं । अग्नि में और अधिक घी डालने के समान, विषय पिपासा अधिक से अधिक बलवान होती जाती है । किन्तु राम नाम ऐसी अचूक औषधि है कि जाने, अजाने ठीक-गलत उसे कैसे भी लिया जाय, वह वासनाओं को भस्म कर देती हैं -

छुओ अगनी जान अजाने, वह तो देत जलाए

जैसे राम नाम हरि सिमरन, भव जल पार कराए
धरजी बीज आप गिरे या, चाहे उसे गिराओ
वह तो उगता, फल है देता, देता भूख मिटाए
राम नाम ही राम मिलावे, मनवा निर्मल करता
उलटा सीधा, एढ़ा टेढ़ा भव बंधन कट जाए
तीर्थ शिवोम् हे पापी मनवा, राम सहारा पकड़ो
राम नाम ही सकल सहाई, दुविधा मन की जाए ।। ३६ ।।"

विनय पूर्वक, समर्पण भाव से युक्त हो कर, ईश्वर नाम स्मरण वासनाओं विकारों को जला डालने का कारण है। नाम जप में, विनय भाव का विशेष स्थान है। जब तक भक्त का मन, प्रभु के समक्ष हाहाकार नहीं कर उठता, उसे अपने पूर्वकृत कर्मों पर पश्चाताप नहीं होता, तथा अपने अन्तर के दोषों के प्रति घृणा भाव उसके मन को उद्वेलित नहीं करता, नाम जप भी फलीभूत नहीं होता है। किन्तु दैन्य भाव से लिया गया, उलटा सीधा कैसा भी, विनय पूर्वक नाम स्मरण जगत बंधन से मुक्ति का कारण बनता है।

मन

मन के कई स्तर तथा स्वरुप हैं। विभिन्न स्तरों पर वह, विभिन्न प्रकार से क्रियाशील होता है। जहां एक ओर मन, जगत - बंधन का कारण है तो दूसरी ओर मुक्ति का हेतु भी है। सामान्य संसारी जीवों का मन रोगी होता है, अतएव वह मन के उसी स्वरुप से परिचित होते हैं तथा मन को कोसते रहते हैं। मन का अपना कोई दोष नहीं है, मन से शुभ कार्य लिया जाए तो वह शुभ संकल्प तथा कार्य करता है। किन्तु कार्य ही अशुभ लिया जाए तो मन शुभ कार्य कैसे कर सकता है।

रोगी – मन

यह मन की निम्नतम अवस्था है जिसमें तमोगुण की प्रधानता बनी रहती है। इसी को मन की मूढ़ अवस्था भी कहा जाता है। काम, क्रोध, लोभ, निद्रा, आलस्य इसके लक्षण हैं। मन का तमोगुण शरीर को भी प्रभावित करता है जिससे शारीरिक स्तर भी तमोगुण व्याप्त हो जाता है -

मनवा चाले उलटी चाल

जा तन पर यह गर्व करत है, माया लिपटी खाल

स्वारथ में ही जीवन बीता, उचित न अनुचित देखा

जतन यही वह करता रहता, कैसे मिले यह माल

संत कहें समझाएं वा को, सीख न कोई माने

हठी बना निर्लज्ज है ऐसा, उलझा माया जाल ।। ६४ ।। ".

संतों का उपदेश तब मानेगा, जब उसका चित्त उपदेश को ग्रहण करने के योग्य निर्मित होगा। विष भरे पात्र में, अमृत डाला जाय तो वह भी विष हो जाता है। उसे तो शारीरिक भोग - विलास में ही आनन्द अनुभव होता है। इस नश्वर सुख से हटकर, कोई अनश्वर सुख भी है, इसकी वह कल्पना ही कैसे कर सकता है।

मूढ़ बना है मेरा मनवा, बात एक न माने

बंधा फिरे अभिमान में फिर भी, रहत है सीना ताने

भया बावरा क्रोध लोभ में, पाप पुण्य न जाने

स्वारथ डूबा जात रह्यो है, रहत न एक ठिकाने ।। ६७//"

यह है मूढ़ तथा रोगी मन की अवस्था। वह भवसागर की गहराइयों में बहुत उसे समझाने का प्रयत्न करे तो उसे अपना अहितकारी मानता है।

भोगी - मन

यह रजोगुण प्रधान अवस्था है जिसे योग मार्ग में क्षिप्तावस्था कहा गया है। जिस प्रकार गेंद कभी इधर, तो कभी उधर, फेंका जाता है, उसी प्रकार भोगी मन भी, सदैव चंचल बना, एक विषय से दूसरे विषय पर भटकता रहता है। उस में स्थिरता या एकाग्रता नाम मात्र को भी नहीं होती। विषय भोग के साथ साथ, व्यावहारिक कार्यो में भी उसकी तीव्र इच्छा बनी रहती है। मन तथा शरीर दोनों ही भटकते रहते हैं -

मनवा रहत है माया संग

माया ओढ़त माया खावत, रचा उसी के संग

माया माही खेलत कूदत, माया करत विचारा

और फिर कहा-

बना उसी में रंग-बिरंगा, करत उसी का संग ।। ७१ ।। "

माया रंग रंगा है मनवा, माया में ही डोले
माया में ही करे तमाशे, माया माया बोले
माया स्वांग बनाए अपना, माया वास करे वह
माया कह कह नाचन लागा, माया में मुख खोले
माया साधन, माया भक्ति माया भोग करे वह
माया तीरथ, माया विचरण, माया के रंग घोले ।। ६८ ।। "

इस प्रकार भोगी मन पूरी तरह माया में ही रचा पचा रहता है। धन, वैभव, अधिकार, यश तथा विषय भोग ही उसका प्राप्तव्य होता है । जगत को वह कार्यक्षेत्र नहीं अपितु भोग - क्षेत्र समझता है तथा भोग के साधन जुटाने तथा उन्हें भोगने में ही अपना सारा जीवन होम कर देता है ।

भोगी-योगी - मन

इस अवस्था में, मन में तम रज के साथ सत्व गुण भी प्रधान अवस्था में आ जाता है । कभी मन रज प्रधान हो जाता है तो कभी सत्व गुण । इस प्रकार तम-रज तथा सत्व गुण के दो छोरों में झूलता रहता है। कभी देवत्व धारण कर लेता है तो कभी राक्षस बन बैठता है। उसका कब कौन सा रुप उभर कर ऊपर आ जाए, कहा नहीं जा सकता । योग मार्ग में इसे ही चित्त की विक्षिप्तावस्था कहा गया है । चिन्तन तथा अन्तर शुभ वासना उदय होने पर देवतुल्य, पूजा-पाठ, साधन सत्कार्यों में रत् हो जाता है । किन्तु अशुभ वासना उदय हो जाने पर भोग वासना तथा असत् कार्यों में लिप्त हो जाता है । यह मन की दुविधा पूर्ण स्थिति है । कभी प्रभु की ओर बढ़ने का मन होता है तो जगत भी लुभावना दीखता है । जगत छोड़ने का भी मन नही होता ।

"दुविधा तज न पावे मेरो मन, दुविधा तज न पावे
फँसा है जगत द्वन्द्व में ऐसा, निकल नहीं वह पावे
क्या करना, क्या नाहीं करना, कठिन है निश्चय करना
भूल भुलैया नित्य ही मनवा, रहत सदा भरमावे

लागे अच्छा एक दिवस कुछ, दूजे दिवस न लागे

ऐसी दशा भई क्यों मन की, समझ नहीं कुछ आवे" ।। ६६ ।।

ऐसी है भोगी-योगी-मन की दुविधा जनक स्थिति । कभी पूजा, उपासना या ध्यान में मन लगता है तो दूसरे दिन यह सब निरर्थक प्रतीत होता है । कभी एक क्षण भोग में मन रमता है तो अगले ही क्षण उससे उकता जाता है। ऐसा मन जीवन का निश्चित दिशा- निर्देशन नही कर पाता । किन्तु फिर भी जब मन की सत्वगुण प्रधान अवस्था हो, तो उसका लाभ उठा कर, सात्विक कर्मों के अधिकाधिक संस्कार संचित कर चित्त की अनुकूल स्थिति का निर्माण अवश्य कर सकता है । परन्तु प्रायः जीव ऐसा कर पाने में विफल ही रहते हैं । ऐसे मन शुभ तथा अशुभ दोनो प्रकार के संस्कार संचित होते हैं । चित्त की विक्षिप्त अवस्था में ही, सत्वगुण की प्रधानता होने पर पश्चाताप एवं विनय के भाव उदय होते हैं जो आगे चलकर साधन - मार्ग में अत्यंत ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं ।

योगी - मन

यह मन की सत्वगुण प्रधान अवस्था है जिसे योग मार्ग में एकाग्र मन कहा जाता है । यह अन्तर्मुखी मन की स्थिर अवस्था है। इसे ही मन की ध्येयाकार अवस्था भी कहा जाता है । इस अवस्था में मन ध्येय में इतना तल्लीनं हो जाता है कि उसका अपना आप ही विलीन सा दिखाई देने लगता है। यद्यपि मन विलीन नहीं होता, यदि विलीन हो जाय तो फिर ध्येय को कौन देखे ? किन्तु वह ध्येय से ऐसा एक हो जाता है कि दो की कल्पना करना कठिन हो जाता है। यदि मन को ध्येय से हटाने का प्रयत्न भी किया जाय, तो बार- बार वहीं चला जाता है ।

जैसे संसारी जीवों का मन जगत के किसी न किसी वस्तु, स्वरुप अथवा दृश्य की ओर आकर्षित रहता है, ऐसे ही भक्त का योगी मन भी, बार बार प्रभु की ओर ही खिंच जाता है। भक्त यदि जगत को देखता भी है तो वहां भी उसे सर्वत्र प्रभु ही विद्यमान तथा प्रसारित दिखाई देते हैं। ऐसा भक्त भगवान की गोद में ही सोता, बैठता या खेलता है । न वह भगवान को छोड़कर कहीं जाता है, न ही भगवान उसे छोड़कर कहीं जाते हैं । यदि कहीं जाते भी हैं तो इकट्ठे ही । यह अनन्यता, तन्मयता अथवा एकाग्रता है।

" मेरो मन राम में ही सुख माने

बाकी विषय हैं मिथ्याा जग के, दूजा सुख न जाने
राम भजन में मन है लागा जुड़ा ज्यों चांद पपीहा
इधर उधर अब जावत नाहीं, रहत हरि गुण गाने
मिथ्या जग, मिथ्या परकाशित, अभिमुख ब्रह्म सरूपा
मन में है आनन्द समाया, छुटे सकल बहाने
शोक मोह तो विगत भए हैं, संशय सब ही भागे
आतमलीन भया आतम में, सुख जाने अनजाने ।। १००॥ "

यह है योगी मन की अवस्था का स्वरुप, जिसे दीर्घ कालीन अखण्ड साधना से भी प्रभु कृपा के बिना प्राप्त करना कठिन है । जगत के प्रति आसक्ति का पूर्ण वैराग्य तथा प्रभु चरणों में उत्कट प्रेम ही, प्रभु कृपा को प्राप्त कराने में सहायक होते हैं । तब जगत के विषयो में नहीं, राम में ही भक्त सुख मानता है । वह अपने मन से, अपने मन में ही आनन्दित रहता है ध्यान रहे कि इस अवस्था में भी मन की क्रिया पूरी तरह समाप्त नहीं होती । प्रभु के रुप में ही सही, एक विषय उसके अभिमुख बना ही रहता है । जब तक कोई भी विषय अभिमुख है, तब तक मन का अस्तित्व भी है । यह अस्तित्व तभी समाप्त होता है जब अपने से पृथक, सभी पदार्थ विलीन हो जाते हैं ।

भावनातीत - मन

मन की यह अवस्था तीनों गुणों से अतीत है । जब कोई भी संकल्प विकल्प, विचार, वासना, संस्कार, भाव तथा विकार मन में उदय नही होता, मन की सभी क्रियाएं, विलीन हो जाती हैं, क्योंकि मन के साथ चेतना के संयोग का वियोग हो जाता है । योग मार्ग में इसे ही निरुद्ध मन कहा जाता है । जगत विद्यमान होते हुए भी भक्त के लिए विलीन हो जाता है । जगत का ज्ञान, चित्त की कार्यशीलता पर आधारित है । चित्त के निरुद्ध हो जाने पर जगत ज्ञान भी चित्त पर प्रतिबिम्बित होना बन्द हो जाता है । यहाँ तक कि भगवान की भी अपने से भिन्न अनुभूति नहीं होती । यह कहना कि भावातीत मन का अस्तित्व ही नहीं होता,

असंगत नहीं। अर्थात् भावातीत मन का अर्थ है मन का नहीं होना। उस अवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि कल्पना करना भी मन की ही क्रिया है।

सेज पिया की कैसी होगी
नित्य मनोहर कैसा होगा, चेतनताई कैसी होगी
क्षणभंगुर यह जग ही देखा, जग में नित्य न कुछ भी
कैसे कल्पित सेज पिया की, सेज पिया की कैसी होगी
इन्द्रिन की तो गति नही हैं, कैसे समझे भेद पिया का
पीव नित्य है, पीव अनन्ता, सेज पिया की कैसी होगी
तीर्थ शिवोम् सुनो भगवन्ता, सुख पाऊं मैं सेज पिया की
जानूं न मैं सेज पिया की, सेज पिया की कैसी होगी ।। १६१।। "

शास्त्र उसको केवल्यावस्था अथवा निर्विकल्प समाधि कहता है। वह यह वर्णन तो करता है कि वहाँ जगत नहीं है, फिर क्या है ? यह नहीं बता पाता। नित्य की कल्पना ही की जा सकती है, किन्तु उसे जानने के लिए उसके अनुभव की आवश्यकता है। जब तक अनित्य जगत सामने से हट नही जाता, नित्य समक्ष कैसे आ सकता है। हाँ, यह सम्भव है कि नित्य तत्व का अनुभव हो जाने के पश्चात् अनित्य जगत गौण अनुभव होने लगे, तथा नित्य का आधार भूत नित्य तत्व दीखने लगे। परन्तु फिर भी यह सब शास्त्र के तर्क हैं तथा सभी तर्क बुद्धि की सीमा के ही अन्तर्गत है। मुख्य बात यह है कि मन की भावातीत अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। यह अनुभव का विषय है।

विविध

इस शीर्षक के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के पद है, जैसे

उम्र दी मैंने गंवा, इस जग के पीछे भागते
अब रहा पछताय हुं मैं, क्यों रहा मैं भागते
दिन में न आराम पाया, रात भी जागा किया
था लगा जग में ही दिन भर मैं रहा बस भागते ।। १२६ ।। "

तो कभी कहा-

"पापी नीच कुकर्मी, मुझसा बुरा न कोई

पाप करूं पर उसे छुपाऊं, मुक्ति कैसे होई
मेरी तो यह आदत पक्की, दोष ही जग में देखूं
पर मैं ही हूं बुरा सभी से, बुरा न दूजा कोई ।। १२७ ।।"

कभी अपनी बुरी हालत पर ऐसे कहा है

" आंगन साफ करूं मैं कैसे, कचरा बहुत जमा है
जतन करूं तो भी गंदा, ऐसा हाल बना है
कर्म अनेकों संचित मन में, अच्छे बुरे सभी ही
चंचल मनवा ठहर न पाए, उछलत बहु घना है
चेतनताई नहीं तनिक भी, पर अभिमान में डूबा
जो है चेतन गर्व करे न, थोथा बजत चना है ।। १२६ ।। '

तो कभी भक्त प्रभु मिलन की ओर कूच करता है

"प्रभु मिलने का मौसम आ गया है
सभी कुछ छोड़कर अब तो चलो जी, की छुटकारे का मौसम आ गया है
रहा तू अब तलक कैदी जहां का, खुले में सासं तक तुझको मिला न
गुजारी उम्र तूने ही तड़पते, पर अब तो, चहचहाने का ही मौसम आ गया है
तुझे मालूम न थी अपन ताकत, कि तू सारे जहां पह एक कामिल
रहा दबता तू बस मजबूरियों से, कि ताकत अब दिखानें का यह मौसम आ गया है।"

तो कभी प्रभु मिलन के आनन्द में डूब जाता है -

"राम ही मेरा प्रियतम प्यारा
राम बसत है हिरदय माही, राम मेरा रखवारा
राम से नेह लगा है मन में, बढ़त रहत दिन राती
जहां देखूं तहां राम विराजें, राम ही बंधु, राम पति है,
राम बिना पल भर न बीते, राम मेरा आधारा
राम नाम मेरे मन माहीं, चलत है नित्य निरन्तर
ऊठत बैठत राम जपूं मैं, राम ही करत विचारा ।। २१०।। "

तो फिर कभी माया का रोना इस प्रकार रोया गया है-

जगत के परवाह में, बहता रहा बहता रहा
पर किनारा न मिला, बहता रहा बहता रहा
आर है न पार कोई, यह जगह ऐसा बना
फिर किनारा क्यों मिले, बहता रहा, बहता रहा ।।२१३।। "

माया का ही एक दूसरा वर्णन-

ज्यों नील आकाश दिखे है, पर यह केवल माया
जगत बनाया जैसे सपना, जीव रहा भरमाया
चेतनताई जग के माहीं, पर जड़ता है छाई
चेतन बिना नहीं है किरिया, जीव रहा उलझाया ।। २१५।। "

और अब थोड़ा उद्बोधन के बारे में भी लिख दिया जावे। सन्तों ने तरह तरह से जीव को समझाया है। सन्त न केवल जीव को ही, अपितु अपने आप को भी समझाते हैं। कभी अपने आप के माध्यम से जीव को, तो कभी जीव के माध्यम से अपने आप को

"मैं पापी बड़ा चालाक, नहीं पर कोई जाने
मैं छुप छुप करता पाप, नहीं कोई पहचाने
रात अंधेरी बड़ी भयानक, मोहे अच्छी लागे
पाप करन का अवसर देती, जिससे कोई न जाने ।। १३४।। "

राम नाम महिमा का भी बखान किया गया है,

अमर प्रभु है, अमर नाम है, जग है मरने हारा
नाम जपे जो नित्य प्रभु का, कौन है मारन हारा
नश्वर नाम-रूप यह मिथ्या, पर न नाम प्रभु का
छिन छिन पल पल सिमरन कर ले, दुख है मेटनहारा ।।१५२।। "

अधिक क्या लिखा जाय ? पुस्तक आपके सामने है। पसन्द-नापसन्द का आपको अधिकार है। जैसा बन पड़ा, जैसे भाव उदय हुए, जैसा गुरु महाराज ने लिखवाया है, लिख दिया है। जिस प्रकार माता-पिता को, अपनी सन्तान कैसी

भी हो, अच्छी ही लगती है, इसी प्रकार रचनाकार को भी, अपनी रचना (प्रत्येक) प्यारी ही लगती है। इसका निर्णय तो दूसरे ही कर सकते हैं।

भजन-संग्रह भाषा की विविधता लिए हुए है। कई भाषाओं का समन्वय पाठकों, गायकों को यहां देखने को मिलेगा। विविध कवियों की छाप भी यहां देखी जा सकती है।

इस पुस्तक की पाण्डुलिपी तैयार करने में सुश्री कुसुम भारद्वाज ने ही अनथक प्रयत्न किया है तथा राग-ताल निश्चित करने का कार्य ब्रह्मचारी पंकज प्रकाश ने। इन दोनों के सहयोग के बिना पुस्तक के वर्तमान स्वरुप में बन पाना कठिन होता।

अन्त में भक्तों, पाठकों, गायकों से निवेदन है कि इस संग्रह में भाव को प्रधानता प्रदान की गई है। यदि इन्हें भाव -पूर्ण तथा एकाग्र चित्त हो कर, गाया जाए, तभी इनका वास्तविक आनन्द भी उठाया जा सकेगा तथा गायक के हृदय को भी प्रभावित करेगा। इसके लिए संगीत की विधिवत् शिक्षा आवश्यक नहीं। यदि हो, तो सोने पर सुहागा है। अन्यथा भक्त तो जैसे भी स्वर ताल में इसे गाएगा, उसे आनन्द की ही प्राप्ति होगी। श्री गुरु महाराज के श्री चरणों में निवेदन कि आप सब का कन्याण करें।

नारायण कुटी देवास (म.प्र.)

दि. ११/१२/६६

-शिवोम तीर्थ

अनुक्रमणिका

गुरूदेव

रचना क्रमांक		पृष्ठ क्रमांक
१.	गुरूकृपा ! फिर डरना क्या	१
२.	गुरू वाणी भव बंधन काटे.....	१
३.	खोजत फिरा शिवोम् जगत में....	२
४.	मेरा गुरु गुणों की खान.....	२
५.	पार ब्रह्म है सद्गुरु देवा.....	३
६.	जनम सफलता...	३
७.	डूबनहार होय नदिया में.....	४
८.	वीतराग भय क्रोध हुए जन....	४
९.	तुम ज्ञान - सिन्धु करुणाकर हो.....	५
१०.	जनम जनम से शिष मैं तेरा.....	५
११.	मन गुरु चरनन में लागा.....	६
१२.	सद्गुरु के बलिहारी जाऊं.....	६
१३.	ॐ जय जय गुरुदेवा.....	७
१४.	परम पियारा सद्गुरुदेवा...	८
१५.	गुरुदेव मैं तेरा हूँ.....	८
१६.	बंधन टूटे सद्गुरु किरपा	९
१७.	सद्गुरु किरपा मैं बलिहारी....	९
१८.	चिन्तामणि है सद्गुरुदेवा.....	१०
१९.	मस्तक हाथ रखा गुरुदेवा.....	१०
२०.	हे मेरे गुरुदेव जग में.....	११
२१.	हे विष्णुतीर्थ प्रभु देवा.	१२
२२.	न डूबे न चोरी होय..	१२
२३.	जब चली सुरतिया ऊपर को.....	१३

विरह

२४.	पिया गए परदेश खड़ी मैं.....	१४

२५. मन प्रीत जगी प्रभु प्रियतम की १४
२६.मेरे मन में तू समा जा १५
२७.काय करूं ? प्रियतम नहीं मानत..... १५
२८.मेरो श्याम गयो है कौन गली १६
२९.प्रेम छिपाए छिपत है नाही १६
३०.पति मिलन का समय अनोखा १७
३१.कट गया जीवन विरथा मोरा १७
३२.प्रभुजी माया प्रबल रचाई. १८
३३.न तरसाओ बालमा १८
३४.याद प्रभु में नयनां बरसें १९
३५.प्रात भयो पर पी नहीं आए १९
३६.सोचत सोचत घबरावत हूँ २०
३७.जा मन अन्तर पीड़ा लागी २०

विनय

३८.एक चिन्ता है यही बस छूओ २१
३९.अगनी जान अजाने .. २१
४०.नयन उघाड़ो प्यारे प्रीतम २२
४१.धुन्ध है छाई मेरे अन्दर २२
४२.हौं तो श्याम भई मतवारी २३
४३.आ गया हूँ आ गया २३
४४.राज न चाहूँ न ही मुक्ति २४
४५.क्या करूं मैं क्या करूं २४
४६.क्या तुम्हें सुनाऊं राम २५
४७.नदिया के साथ साथ मैं .. २५
४८.यह समुन्दर रेत का है २६
४९.मैं हूँ शरण तीहारी आया २६
५०.सारा जग मैने छोड़ दिया २७
५१.नयन मेरे पर नयनहीन हूँ २७
५२.हौं तो शरण पड़ी हूँ तेरी २८

५३.प्रभु जी, कृपा करत क्यों नाहीं..... २८
५४.मै पंछी, तेरा रूप अकाश समाना.... २९
५५.आओ आओ आ भी जाओ.... २९
५६.मंझदार में नैया मोरी हैं..... ३०
५७.आ गया हूँ आ गया..... ३०
५८.मैं पापी गुणहीन अजाना..... ३१
५९.प्रभु जी में हूँ शरण तीहारी..... ३१
६०.तुझे ढूढते है, तुझे खोजते है..... ३२
६१.कहाँ खोजू मैं राम को जाए..... ३२

मन

६२.मोहे देयो बधाई आज..... ३३
६३.जब श्याम की बंसी बाजत है..... ३३
६४.मनवा चाले उलटी चाल..... ३४
६५.जग की गाड़ी चले निरन्तर ३४
६६.जागो जागो मनवा जागो.... ३५
६७.मूढ़ बना है मेरा मनवा..... ३५
६८.माया रंग रंगा है मनवा..... ३६
६९.दुविधा तजि न पावे..... ३६
७०.मनवा अब तू क्यों पछजाए.. ३७
७१.मनवा रहत है माया संग..... ३७
७२.मनवा समझत काहे नाही..... ३८
७३.नाचत गावत मोर पपीहा..... ३८
७४.असुर मन, सुर में कैसे आवे..... ३९
७५.छुटना चाहूँ जगत से..... ३९
७६.धीरज मन में मेरे आवे..... ४०
७७.जगत वासना उलझा मनवा.. ४०
७८.छिन्न ? भिन्न ज्यों वायु करती..... ४१
७९.मैं चला था वासना को ४१
८०.राज मिले त्रैलोकी का भी..... ४२

८१.मनवा क्यों तू पड़ा मेरे पीछे..... ४२
८२.मनवा भटकत फिरत है काहे..... ४३
८३.मनवा जगहि रहत बसत है..... ४३
८४.है संसारी चंचल मनवा..... ४४
८५.प्रभु नाम विसारा है जिसने ४४
८६.हरि का भजन करत जो जन है..... ४५
८७.प्रभु मोहे मन जीने न देता..... ४५
८८.क्या करूं मन को मनाऊं..... ४६
८९.मन नहीं मानत मोरी बात..... ४६
९०.मन तो उड़ता ही रहा आकाश में..... ४७
९१.जग मन भरम भुलाना..... ४७
९२.हाय अब मैं क्या करूं..... ४८
९३.मनवा जात जगत के माहीं ४८
९४.मेरे मन को क्या हुआ..... ४९
९५.माया ममता उलझत जाए..... ४९
९६.देखत सुनत विचारत समझत..... ५०
९७.कैसा मूरख मनवा तू है ५०
९८.मूरख मनवा बात न समझे..... ५१
९९.निपट घमण्डी पापी मनवा..... ५१
१००.मेरा मन राम में ही सुख माने..... ५२
१०१.क्या करूं इस मन का प्रियतम..... ५२
१०२.मन तेरा विषयन क्यों लागा रे..... ५३
१०३.क्या कहूं मनवा मैं तोहे..... ५३
१०४.चैन से रहने क्यों न देवे..... ५४
१०५.वासनाओं का है जंगल ५४
१०६.बूंद-बूंद कर बरसे वर्षा.. ५५
१०७.वासना मरती नहीं..... ५५

सिखावन

१०८.जग कीचड़ में पड़ा हुआ हूँ..... ५६

१०९. चढ़ा प्रेम का रंग है गहरा..... ५६
११०. अभिमान में भूला फिरे..... ५७
१११. काबू है वाणी पर नाहीं.... ५७
११२. भूली फिरे जगत के माहीं ५८
११३. साधन सब योगों का राजा ... ५८
११४. सुमिरन नहीं जो कीना तूने..... ५९
११५. लागत लागत है रंग लागत..... ५९
११६. मेरा मन विमान की भाँति ६०
११७. सजनी पिया मिलन का तेरे..... ६०
११८. प्रेम प्रकट जा हिरदय नाहीं.. ६१
११९. मनवा धीर धरत क्यों नाही..... ६१
१२०. निन्दक भला करे भगवान..... ६२
१२१. माला फेरत तू थक हारा..... ६२
१२२. यह क्या गजब किया मैनें..... ६३
१२३. जग में भीड़ भरी है भारी. ६३
१२४. संत सुनो यह कथनी मेरी..... ६४
१२५. अब भी कुछ बिगड़ा न तेरा..... ६४
१२६. उम्र दी मैनें गंवा..... ६५
१२७. पापी नीच कुकर्मी मूरख..... ६५
१२८. जल निरन्तर बह रहा नदिया में है..... ६६
१२९. आंगन साफ करूं मैं कैसे..... ६७
१३०. जो आए सो इक दिन जाए.... ६७
१३१. जो चाहे कल्याण तू मनवा..... ६८
१३२. राम नाम रस लेय तू रसना ६८
१३३. मन्द बुद्धि है जीव अभागा ६९
१३४. मै पापी बड़ा चालाक ६९
१३५. प्रेम गांठ मजबूत नहीं थी..... ७०
१३६. निन्दक निन्दा करे भी कितनी ७०

उद् बोधन

१३७. सन्तो सहज समाधि लगाओ..... ७१
१३८. छोड़त नाहीं काहे जग को.. ७१
१३६. हे प्रभु खोजन तेरा दर..... ७२
१४०. जैसे वायु झाड़ हिलाए..... ७२
१४१. सत्य स्वरुपा हरि भजन है..... ७३
१४२. मुझ को यह क्या हो गया..... ७३
१४३. झाड़ विषैले, बना सघन वन..... ७४
१४४. प्रभु विछोह दुख देत है भारी. ७४
१४५. जब जगत को देखता हूँ..... ७५
१४६. उड़ चला आकाश पंछी..... ७५
१४७. चलो भैया राम के घर को चलो.. ७६
१४८. मारग दुर्गम देख के साधक ७६
१४९. दुख पावत पर मन नहीं मानत ७७
१५०. पापी मो सम जग में नाहीं ७७

विविध

१५१. सिमरन नाम सदा सुखदाई ७८
१५२. अमर प्रभु है अमर नाम है ७८
१५३. मैं पी संग रास रचाऊंगी..... ७९
१५४. मोहे लागा प्रेम का बाण सखी.... ७९
१५५. श्याम ने मन मेरा हर लीनो... ८०
१५६. प्रभु प्रेम मन में प्रगटाय ८०
१५७. पहाड़ो की रंगत, निराली सुहानी..... ८१
१५८. सेजे सोई साथ पिया के..... ८२
१५६. रात अंध्यारी है सिर पर ८२
१६०. कठिन तपस्या पुण्य कृपा बिन..... ८३
१६१. प्रभु मन तुम बिन नहीं लागत..... ८३
१६२. निर्गुण ब्रह्म का साधन भक्ति..... ८४
१६३. होत निराश तू काहे मनवा..... ८४

१६४. हरि दर्शन सुख देत अमोलक ८५
१६५. विट्ठला ! तुम सदा नित्य अविनाशी..... ८५
१६६. मंगल है गुणगान प्रभु का ८६
१६७. तुमको देखा जो प्रभु मैं..... ८६
१६८. सुनी बजावत वंशी कृष्णा.... ८७
१६९. हरि मैं परगट तोहे देखा..... ८७
१७०. मैं प्रेम में पूजा भूल गई ८८
१७१. श्याम तुम क्यों हो रहे सताए..... ८८
१७२. बरसे अंगना आए बदरवा ८९
१७३ तू नहीं समझेगा..... ८९
१७४. जब ते दर्शन प्रीतम पाया..... ९०
१७५. अन्दर झांक के देखो भाई..... ९०
१७६. सजी संवर के बैठी दुल्हन... ९१
१७७. मैं निरखत हूँ श्याम सुन्दर को ९१
१७८. काल है खावत जीव बेचारा..... ९२
१७९. गगन मण्डल मुरली धुन बाजे .. ९२
१८०. प्रेम का रूप है मीरा रानी..... ९३
१८१. नेह मोरा लागा साथ घनश्याम..... ९३
१८२. न चिन्ता, न फिकर तुझको..... ९४
१८३. अब जो जलवा हो गया..... ९४
१८४. मरना भला है उसका..... ९५
१८५. मेरो मन कृष्ण चरण में लागा..... ९५
१८६. घर मैं अपने जा रहा हूँ..... ९६
१८७ . आज मैनें दर्शन हरि का पाया ९६
१८८. जब प्रेम है अन्दर भर जाता..... ९७
१८९. मन नाचत है, मन गावत है..... ९७
१९०. प्रभु मोहे संतन सेवा दीजो..... ९८
१९१. सेज पिया की कैसी होगी..... ९८
१९२. उदासिन जो देह गति से ९९

१९३. मैं तरसूं बदनामी ताई..... ९९
१९४. कामना नाही सतावे..... १००
१९५. जग जीवन प्रभु राम सुआमी..... १००
१९६. कारी बदरिया रिमझिम बरसे..... १०१
१९७. जप तप संयम पूजा अर्चन... १०१
१९८. हरि का रंग चढ़ा मन माहीं ... १०२
१९९. मेरे घर प्रियतम आए विराजे..... १०२
२००. नयनन माहीं आसन तुमरा.. १०३
२०१. अन्तर जैसा सुख नहीं कोई.. १०३
२०२. आज मोरा पीव घरीं आया..... १०४
२०३. प्रेम नगरिया सबसे न्यारी..... १०४
२०४. पानी बिन झाड़ पियासा १०५
२०५. सुरत सुहागिन भटकत काहे..... १०५
२०६. मैं चला था खोजने उस राम को..... १०६
२०७. जब प्रेम है अन्दर भर जाता..... १०७
२०८. प्रभु मिलने का मौसम आ गया है..... १०७
२०९. प्रभु नैनन माहीं छुपाय लियो..... १०८
२१०. राम ही मेरा प्रियतम प्यारा..... १०८
२११. कृष्ण चरण मन लागा..... १०९
२१२. मैं तो कृष्ण ही पुकारूं.... १०९
२१३. जगत के परवाह में..... ११०
२१४. जलवा अपना देख के काया..... ११०
२१५. ज्यों नीला आकाश दिखे है..... १११
२१६. जग तरंगित लोभ से है..... १११
२१७. माया तू क्या खेल रचाया..... ११२
२१८. माया क्या क्या रंग दिखाए..... ११२
२१९. अब तक नचाया तूने..... ११३

गुरुदेव

(१)

गुरूदेव - राग - कलावती ताल - केहरवा

गुरु कृपा ! फिर डरना क्या रे ।
जग बंधन जब छूट गया तो, जन्म कहां और मरना क्या रे ॥

टूट गया जब नाता सब से, फिर कोई न संगी साथी ।
जग में खाता बन्द हुआ जब, लेना क्या और करना क्या रे ॥
भोग तेरे सब छीन हुए जब, मन जब विषयन जात नहीं है ।
फिर भोगों की उलझन कैसी, रखना क्या और धरना क्या रे ॥
जब मन है अंदर में पलटा, भूख नहीं इन्द्रिन को कुछ भी ।
सूख गया विष सारा तब ही, पीना क्या और भरना क्या रे ॥
कृपा बिना भव सागर कोई, नहीं उतरता पार कभी भी ।
नज़र हुई जब देव गुरु की, पार हुए फिर तिरना क्या रे ॥
तीर्थ शिवोम् दया गुरुवर की, नदी लंघावे दीन जनों को ।
कृपा अनत का सेतु पाया, लांघ गए फिर गिरना क्या रे ॥

(२)

गुरूदेव - राग मिश्र तिलक कामोद ताल – धुमाली

गुरु वाणी भव बंधन काटे ।
अमृत रस जो पान करे है, ताकी दुविधा नाठे ॥
सीधे जात है हृदय गगन में, नाशे मल माया को ।
निर्मल हिरदय, प्रेम भाव मन, कर्म सभी ही फाटे ।।
यही वाणी है अजब अनूठी, पार न इसका कोई ।
माया परदा दूर करे है, हरदम झलक विराटे ॥
तीर्थ शिवोम् सुनी मैं वाणी, मन आनन्द भया ।
आशा तृष्णा दूर हुई सब, अन्तर सब भ्रम हाटे ।।

(३)

गुरूदेव - राग - काफी ताल - धुमाली

खोजत फिरा शिवोम् जगत में, पता न तेरा पाया ।
मिला तो मिला तू अन्तर माही, विरथा समय गवाया ।।
जग के कण कण में तू व्यापक, आवे नजर कहीं न ।
जब तक दीखे अन्तर नाहीं, बाहर किसे न पाया ।।
जब तक कृपा है सद्गुरु नाहीं, दीखत कहीं भी नाहीं ।
अन्दर बाहर दीखे तब ही, सद्गुरु शरणीं आया ॥
माया डूबा है जग सारा, अंधा बना बेचारा
अपना आप न सूझे उसको, तम में ही दुख पाया ।।
नयनन हैं पर देखत नाहीं, खोले नाहीं, बन्द किए जग बैठा ।
जब तक नयनां खोले नाहीं, अन्त किसे न पाया ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे मन मूरख, काहे नयन न खोले ।
अन्दर बाहर पीय बसत है, जिन खोला तिन पाया ।।

(४)

गुरूदेव - राग - अहीर भैरव ताल - धुमाली

मेरा गुरु गुणों की खान ।
जा पर कृपा करे बेअन्ता, वह जावे सब जान ॥
बन्धन काटे, सीमा तोड़े, किरपा ताकी न्यारी ।
शिष पावे है सुख अनन्ता, रहे न वह अन्जान ।।
रहे अडोल सदा ही जग में, जुगती कर्म पछाने ।
शोक मोह से रहे अछूता, इन को वैरी जान ।।
ज्ञान - समाधि भाव स्थिति में, सदा ही विचरण करता ।
भक्तन पर जब दया करे वह, गत होवे अज्ञान ।।
सहज अवस्था सहज समाधि, रहता लीन सदा ही ।
अपने में ही मस्त बना वह, दूर मान अपमान ।।
तीर्थ शिवोम् गुरु पर ऐसे, तन मन सब ही वारुं ।
ऐसा सदगुरु आवे जग में, करने को कल्यान ।।

(५)

गुरूदेव - राग - तिलक कामोद ताल - धुमाली

पारब्रह्म है सद्गुरुदेवा, तुरीय ब्रह्म ही सद्गुरुदेवा ।
सर्व विधाता सद्गुरुदेवा, जगत बनाए सद्गुरुदेवा ।।
जाग्रत में वह भोग रमा है, भोगों विविध प्रकारा ।
भोग भोगता रहे निआरा, ऐसा मेरा सद्गुरुदेवा ।।
सब प्रंपच है लीन उसी में, यही प्रसुप्तावस्था ।
न कुछ भी, फिर दिखे दिखाए, ऐसा मेरा सद्गुरुदेवा ।।
अन्तर देखे वह सब लीला, माया जो कहलावे ।
यह है उसकी स्वप्नावस्था, ऐसा मेरा सद्गुरुदेवा ॥
सब कुछ है, पर कुछ भी नाहीं, माया का विस्तारा ।
सतत् समाधि बैठा देवा, ऐसा मेरा सद्गुरुदेवा ।।
तीर्थ शिवोम् प्रणाम करत है, सद्गुरु की ही महिमा ।
करे करावे, रहे अछूता ऐसा मेरा सद्गुरुदेवा ।।

(६)

गुरूदेव - राग - दरबारी कान्हड़ा ताल - धुमाली

जनम सफलता, गुरु किरपा से ।
मन निर्मलता, गुरु किरपा से ।।
जग दीखे है, कैद यह खाना ।
कैद छुड़ाया, गुरु किरपा से ।।
जीव बना अंधा विषयन में ।
अंजन ज्ञान, गुरु किरपा से ।।
राम नाम बिना, भगती नाही ।
नाम का दान, गुरु किरपा से ।।
माया जीव फंसा उलझाया ।
जीवन मुक्ति, गुरु किरपा से ।।
तीर्थ शिवोम्, कृपा गुरु कीनी ।
राम मिलन हो, गुरु किरपा से ।।

(७)

गुरूदेव - राग - सोरठ ताल - केहरवा

बीत राग भय क्रोध हुए जन, जग बंधन से छूट गए ।
माया का आवरण उतारें, शोक मोह सब दूर हुए ।।
ज्ञान तपस्या है वह साधन, मुक्त करे भव बंधन से ।
भक्ति ज्ञान की नाव पकड़ कर, गहरा सागर कूद गए ।।
जब तक नाव मिले न जन को, अपरम्पार नहीं मिलता ।
गुरु कृपा से ज्ञान तपस्या, गुरु कृपा से पार पए ।।
साधन ज्ञान कठिन न कोई, साधन तारे जीवों को ।
साधन ही है रुप प्रभु का, साधन से पुरनूर भए ।।
गुरु प्रभु साधन सब एको, प्रभु ही नाना रूप धरे ।
करे कृपा जीवों पर जब वह, दीनन सागर पार गए ।।
तीर्थ शिवोम् कृपा सद्गुरु की, दीनन शरण तुम्हारी है ।
किरिपा राखे, जाग्रत शक्ति, ताक जन सागर लांघ गए ।।

(८)

गुरूदेव - राग - अहीर - भैरव ताल - केहरवा

डूबनहार होए नदिया में, दूजे पार लगावत नाहीं ।
जो अंधा हो देखत नाहीं, दूजे राह दिखावत नाहीं ।।
मतवाला जो प्रभु प्रेम का, वह ही मारग राम बताए ।
डूबन देत नहीं दूजे को, जग में वह भरमावत नाहीं ।।
राम ही तारे दीन जनों को, पल पल वह रखवाली करता ।
दयावान भक्तन पर अपने, पापिन पार लंघावत नाही ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, हूं पापी मैं शरण तिहारी ।
पार उतारत दीन जनों को, फिर भी नाम धरावत नाहीं ।।

(९)

गुरुदेव - राग - सिन्ध भैरवी ताल - केहरवा

तुम ज्ञान - सिन्धु करुणाकर हो, पर रुप तुम्ही नारायण हो ।
गुरुदेव तुम्हारे पद पंकज, पापों का करत पलायन हो ।।
है मोह बड़ा अत्याचारी, करता आकर्षित दुख देता ।
जब तुमरी किरिपा मिल जाती, तब होती अजब रसायन वो ॥
तम का जो पुंज रहा मन में, है देता जीव को दुख दारुन ।
मन निर्मल तुमरी अनुकम्पा, अन्तर करता, शोभायन वो ॥
तुमरी किरपा से शक्ति बनी, जब किरिया जाग्रत है होती ।
तब जन्म जन्म के पाप कटे, होती है जब कम्पायन वो ॥
गुरुदेव तुम्हारी जय होवे, तुम अशरण शरण प्रदाता हो ।
करते कल्याण हो जीवों का, मुक्ति दायक नारायन हो ।।
है तीर्थ शिवोम् शरण तेरी, है करत विनय श्री चरणों में ।
उपकार करो उद्धार करो, तुम मंगल-करण परायण हो ॥

(१०)

गुरूदेव - राग - भीम पलास ताल – केहरवा

जनम जनम से शिष मैं तेरा, तू गुरुदेव है मेरा ।
पलड़ा मैं छोड़ूं न तेरा, न छोड़े तू मेरा ।।
तेरा मेरा नाता कब का, युगों युगों ही बीते ।
मैं तो शिष्य सदा ही तेरा, तू गुरुदेव है मेरा ।।
जैसे नाव जहाज में बांधी, तैसे मैं चरणों में ।
चरण तुम्हारे कभी न छोड़ूं, तू गुरुदेव है मेरा ।।
विघ्न अनेकों आए मारग, पर नाता न टूटा ।
नाता टूटे भी तो कैसे, तू गुरुदेव है मेरा ।।
रखियो मुझे लगाए चरणीं, रखियो कृपा बनाए ।
मैं देखू अन्तर में तोहे, तू गुरुदेव है मेरा ।।
तीर्थ शिवोम् जैसा कैसा, पर हूं शिष्य तेरा ।
तेरे बिन मेरा न कोई, तू गुरुदेव है मेरा ।।

(११)

गुरूदेव - राग मिश्र काफी ताल - खेमटा

मन गुरु चरनन में लागा ।
गुरु चरनन बिन न कछु सोहे, गुरु चरणीं अनुरागा ।।
मन निर्मलता, माया छूटे, अन्तर आनन्द जागे ।
ज्ञान गंग है बहत निरन्तर, गुरु प्रेम है जागा ।।
आशा तृष्णा छूटी जग की, चिन्ताएं सब भागीं ।
मनवा तो अब मस्त बना है, जग विषयों से भागा ।।
मन रहता आनन्द तरंगित, रंगा रंग चरनन के ।
दुख का रंग जगत का छूटा, चरणों में ही पागा ।।
जग में भी आनन्द है भासित, गुरु ही सर्व वयापे ।
गुरु ही कर्ता हर्ता दीखे, दूर दृष्टि भई कागा ।।
जय तुमरी हो हे गुरुदेवा, मुझे कृतारथ कीना ।
तीर्थ शिवोम् मगन है ऐसा, हुआ प्रेम अनुरागा ।।

(१२)

गुरुदेव - राग जन सम्मोहिनी ताल - धुमाली

सद्गुरु के बलिहारी जाऊं ।
मुझ पर बहु उपकार है कीना, मैं सद्गुरु को ध्याऊं ।।
भगवती अम्बा जाग्रत कीनी, किरियाशील बनाया ।
किरिया करत है भान्ति भान्ति, सद्गुरु के गुण गाऊं ॥
अन्तर्ज्योति परगट कीनी, अनुभव मुझे कराया ।
नाद अनेकों दृश्य हैं दीखत, क्या क्या गुण मैं गाऊं ।।
शक्ति चढ़त है चक्र भेदती, क्रिया अलौकिक करती ।
मन निर्मलता हो सम्पादित, सद्गुरु नाम ध्याऊं ।।
विष्णुतीर्थ प्रभु किरपा कीनी, जीवन सफल बनाया ।
भवसागर का फंद कटा है, सद्गुरु लीन रहाऊं ।।
तीर्थ शिवोम् हे सद्गुरु देवा, जय हो सदा तुम्हारी ।
किया अनुग्रह मो पर भारी, सद्गुरु सद्गुरु गाऊं ।।

(१३)

गुरुदेव - आरती- राग बिलावल ताल – केहरवा

ॐ जय जय गुरुदेवा, स्वामी जय जय गुरुदेवा ।
पार करो भक्तों को, हरो कष्ट देवा ।।

द्वार तुम्हारे ठाड़े, विपदा आन हरो ।
शरण में आए तुमरी, टेर सुनो देवा ।।

हम में जाग्रत होकर, तन का नाश करो ।|
मन निर्मलता पाए, अक्षय सुख देवा ।।

कार्यशीलता तेरी, पाप नाश करती ।
अन्तर्ज्ञान प्रकाशित, दिव्य मौन देवा ।।

तुम हो दीनदयालु, हम पातक भारी ।
करो अनुग्रह हम हैं, दीन हीन देवा ।।

सब जग छोड़ के आए, शरण तेरी मांगे ।
नहीं सहारा कोई, जाएं जहां देवा ।।

क्रियाशील हो करते, कर्मक्षीण सब ही ।
करत विवेक जाग्रत, सुख जीवन देवा ।।

पड़े हैं हम अंध्यारे, तुम ही रखवाले ।
स्वंय सिद्ध जो साधन, करो दान देवा ।।

तीर्थ शिवोम् पुकारे, तव चरणों माहीं ।
शरण पड़े दीनन की, हरो पीर देवा ।।

(१४)

गुरूदेव - राग यमन ताल - धुमाली

परम पियारा सद्गुरुदेवा ।
भक्तन अर्थ अमंगलहारी, परम दयाला सद्गुरुदेवा ।।
शिवस्वरुप शक्ति के दाता, मन निर्मलता मुक्ति प्रदाता ।
शरणागत वत्सल हितकारी, परम कृपाला सद्गुरुदेवा ।।
जय दुखहर्ता जय सुख कर्ता, जय शत्रु संहारण कर्ता ।
जय हो तुमरी जय हो प्रभुजी, जय प्रतिपाला सद्गुरुदेवा ।।
मैं हूं शरण तुम्हारी गुरुवर, चरण कृपा मुझ पर बरसे
मिथ्या ज्ञान त्याग चरणों में, हूं विलीन मैं सद्गुरुदेवा ।।
आशा अन्य न मन कोई, केवल तुम ही लक्ष्य बने हो ।
केवल तुम ही एक सहारा, केवल तुम ही सद्गुरुदेवा ।।
तीर्थ शिवोम् विनय कर जोरे, दास अकिंचन सेवक तुमरा ।
मुझको कहीं भुला न देना, परम प्रतापी सद्गुरुदेवा ।।

(१५)

गुरूदेव - राग कलावती ताल - केहरवा

गुरुदेव मैं तेरा हूं, तेरा ही बस तेरा हूं ।
तेरे सिवा न कोई, इक आसरे पड़ा हूं ।।
जग तो मुझे बुलाए, मन को मेरे रिझाए ।
मन में तो मेरे तू है, तेरे ही मन लगा हूं ।।
तू ही है मेरा साधन, तू ही तो साध्य भी है ।
तू ही करण करावन, तेरे में ही जमा हूं ।।
जैसे तेरे न दूजा, तुम सा तो एक तू है ।
मैं तो हूं दास तेरा, सेवा में ही पड़ा हूं ।।
करना कृपा यह ऐसी, मन तुम में ही लगा हो ।
जग तेरा रुप देखूं, बस गोद में पड़ा हूं ।।
शिव ओम् यह पुकारे, चरणों में रख ही लीजो ।
तन मन में वास तेरा, हर हाल में तेरा हूं ।।

(१६)

गुरूदेव - राग - कलावती ताल - केहरवा

बन्धन टूटे सदगुरु किरपा ।
बन्धन टूटे माया निपटी, यह है सदगुरु किरपा ।।
भक्ति का फल अनुपम पाया, मेटा कर्म का संचय ।
आनन्द हिरदय प्रेम भरा है, यह है सद्गुरु किरपा ।।
मेरा तेरा छूट गया है, सकल जगत है मेरा ।
शत्रु मित्र का भाव है छूटा, यह है सद्गुरु किरपा ॥
अन्दर बाहर भव है बदला, रंगा रंग कर दीना ।
बाहर अन्दर मीठा लागे, यह है सद्गुरु किरपा ।।
मेरे सद्गुरु गहर गम्भीरा, चेतन रूप अनन्ता ।
मैं क्या था ? कीना क्या मोहे, यह है सदगुरु किरपा ।।
तीर्थ शिवोम् गुरु गुण गाए, जो पूरण अविनाशी ।
अपना जैसे लेत बनाए, यह है सदगुरु किरपा ॥

(१७)

गुरूदेव - राग – मालकौंस ताल - धुमाली

सदगुरु किरपा मैं बलिहारी ।
अनूप अनोखी बनी रसायन, आशा तृष्णा मारी ॥
व्यापक दृष्टि प्रेम अनन्ता, समता भाव समाया ।
अन्तर प्रकट निरंजन न्यारा, गई कुबुद्धि सारी ।।
लागी सुरति पिया से ऐसी, छूटत नहीं छुटाए ।
नशा रहत है नित्य निरन्तर, विपदा दूर है भारी ।।
चित्त बना है सेज पिया की, मिलन रसीला पाया ।
जड़ चेतन की ग्रन्थि खुल गई, हुई चेतना प्यारी ।।
अब तो मैं और मेरा प्रियतम, देखे इक दूजे को ।
सर्व समाया साजन मेरा, महिमा उसकी न्यारी ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, क्या किरपा बरसाई ।
भीग गया तन है सब मेरा, उतरत नहीं उतारी ।।

(१८)

गुरूदेव - राग - जोगिआ ताल - धुमाली

चिन्तामणि है सद्गुरुदेवा, सर्व प्रदाता सद्गुरुदेवा ।
मारे तारे, करे करावे, फिर भी न्यारा सद्गुरुदेवा ।।
मनोकामना पूरी सबकी, जो मांगो सो देत है देवा ।
सबका पालक सबका रक्षक, कल्पवृक्ष है सद्गुरुदेवा ।।
पारब्रह्म है सद्गुरुदेवा, जगत नियन्ता सद्गुरुदेवा ।
भक्तन तारे, दुष्टन मारे, शासक जग का सद्गुरुदेवा ।।
मार्ग अनेकों धर्म अनेकों, राजतंत्र भी बने अनेकों ।
सबका कारण, सबका कर्ता, बने बनाए सद्गुरुदेवा ।।
तीर्थ शिवोम् हे सद्गुरुदेवा, शरण में आया सद्गुरुदेवा ।
जगत छुड़ाओ, पार उतारो, किरपा तुमरी सद्गुरुदेवा ।।

(१९)

गुरूदेव - राग -असावरी तोड़ी ताल - धुमाली

मस्तक हाथ रखा गुरुदेवा, मैं आनन्द मनाया ।
सीमाएं सब मेरी टूटी, मैं था जग भरमाया ।।
ऊँच नीच कुछ न मैं जानू, क्या जानूं गुरुदेवा ।
मैं बस किरपा उसकी जानूं, जग का रूप दिखाया ।।
जा किरपा गुरुदेव की होवे, सकल मनोरथ पूरे ।
करे विहार गगन में फिरता, जिसने बन्द खुलाया ॥
अब तो मनवा चेतन बनया, राग द्वेष सब भागे ।
गुरु ने जड़ को चेतन कीना, चेतन दर्श कराया ।।
संग नाव जा लोहा तिरता, गुरु संग शिष्य तैसे ।
सतगुरु किरपा भई अनोखी, भव को पार कराया ।।
तीर्थ शिवोम् हे सद्गुरुदेवा, हूं मैं शरण तिहारी ।
चरणीं राखो शरणीं राखो, जीवन सफल बनाया ।।

(२०)

गुरूदेव - राग – मालकौंस ताल - रूपक

हे मेरे गुरुदेव जग में तो, कोई अपना नहीं ।
एक केवल तू ही अपना, दूसरा अपना नहीं ।।
छोड़ न देना मुझे तुम साथ देता न कोई ।
है किसी का न भरोसा, कोई भी अपना नहीं ॥
डूबती जाती है नैया, तू बचावनहार है ।
है सहारा दूसरा न, कोई अपना है नहीं ।।
है सताता, है रुलाता, जगत मोहे हर घड़ी ।
किस पर करूं विश्वास मैं तो, कोई अपना है नहीं ॥
कर न पाती साधना, उत्साह भी कोई नहीं ।
तेरी शक्ति ही सहारा, कोई अपना है नहीं ।।
जिन्दगी बेकार है, साधन बिना, तेरे बिना ।
लाज रखना तू ही मेरी, कोई अपना है नहीं ।।
अब नहीं इच्छा कोई भी, देख सब कुछ है लिया ।
एक इच्छा बस है तेरी, कोई अपना है नहीं ।।
न रहूं विचलित कभी भी, ऐसा कुछ कर दो मुझे ।
लो बचा दुख से तो मुझे तो, कोई अपना है नहीं ॥
हूं खड़ी शिवोम् तीरथ, हाथ बांधे सामने ।
जिन्दगी तेरे हवाले, कोई अपना है नहीं ॥

(२१)

गुरूदेव - राग - भूप ताल - धुमाली

हे विष्णुतीर्थ प्रभु देवा, हम शरण तेरी हैं देवा
हम उलझ रहे जग माहीं, काढ़ो हम हे देवा ।।
मन बड़ा ही अत्याचारी, दुख देत अति ही भारी ।
हम आए शरण तिहारी, काटो कलेश है देवा ।।
मन हमरा मैल भरा है, विषयों के माहीं सना है ।
वह जग में बहुत रमा है, समझाओ मन हे देवा ।।
मन चंचल बहुत हुआ है, दुखिया भी बहुत हुआ ।
है भोगों में फंसा हुआ है, अब सुनो टेर हे देवा ।।
मन सुनता नहीं किसी की, न सीख ही लेत किसी की ।
समझाए उसको हारे, कर कृपा हमीं पर देवा ।।
अब किसके आगे रोएं, किसको जा हाल सुनाएं ।
है कोई न सुनने हारा, इक तुम ही हो गुरुदेवा ।।
शिवोम् है तुम्हें बुलाए, मन माहीं वह अकुलाए ।
इस मन से पिण्ड छुड़ाओ, हो कृपाशील तुम देवा ।।

(२२)

गुरूदेवा - राग- अडाना ताल - भजनी ठेका

न डूबे न चोरी होए, आग लगे न उसको ।
सद्गुरु नाम अमोलक धन है, जो समझे है उसको ।।
सद्गुरु नाम जहाज है ऐसा, पार उतारे जन को ।
जो सिमरे भव सागर तरता, भय नाहीं है उसको ।।
सद्गुरु नाम भवन है ऐसा, रहे जीव है सुख सों ।
न कोई चोर न संकट ता में, मन भावन सुख उसको ।।
सद्गुरु नाम है ऐसा भोजन, खाए तृप्ति होए ।
विषय वासना तृष्णा नाहीं, आशा नाहीं उसको ।।
सद्गुरु नाम सिमर मन प्यारे, पार उतारे तुझको ।
सिमरन वेले मीठे रस का, पान करावे उसको ।।
तीर्थ शिवोम् हे सद्गुरु देवा, भक्तिदान दो मुझको ।

सिमरन नाम करूं दिन राती, तृष्णा रहे न मुझको ।।

(२३)

गुरूदेव - राग - दरबारी कान्हड़ा ताल - केहरवा

जब चली सुरतिया ऊपर को, तब लीला अजब वह है करती ।
गरजे तरजे और नाद करे, परकाश अनेकों वह करती ।।

है दिव्य ही भावे करे परगट, मन में आनन्द है छा जाता ।

है प्रेम प्रकट मन के अन्दर, अन्तर आलौकित वह करती ।।

शक्ति चालन कम्पन होता, अश्रु हैं भरते नयनों में ।

है बिना किए सब कुछ होता, निर्मल है मन को वह करती ।।

है उत्तम शक्ति की किरिया, जो पार अलौकिक विद्या है ।

वह शुद्ध पवित्र करे हरदम, प्रत्यक्ष है साधन वह करती ।।

साधन हो जाता सहज तभी, वह सहज ही करे क्रिया सब ही ।

है सहज ही चढ़े सुरत ऊपर, अभिमान हीन साधन करती ।।

होता है साधन सहज तभी, कुछ करना नहीं है साधक को ।

हो स्वयंसिद्ध साधन तब ही, अन्तर्मुख मन को है करती ।।

होता है द्रष्टा भाव उदय, शक्ति सुरती की किरिया में ।

है कर्ताभाव विलिन हुआ, मन कर्महीन वह है करती ।।

शिव ओम् सुरतिया जय होवे, तुम माता पिता गुरु स्वामी हो ।

तुम करत अनुग्रह जीवों पर, आतममुख शक्ति है करती ।।

विरह

(२४)

विरह - राग - पहाड़ी ताल - केहरवा

पिया गए परदेश खड़ी मैं राह निहारुं ।
न कोई संदेश, पड़ी मैं यही विचारुं ।।
अटके कहां पिया जाए कर, सुध न लेत हमारी ।
मैं तो हरदम पी पी करती, पी को रहत पुकारूं ।।
कह गए आवन आये नाहीं, मन से मुझे भुलाया ।
मनवा तो पी बिन न लागे, ले ले नाम गुहारुं ।।
जग विषयन तो काटे खाएं, बिच्छु डंक लगाएं ।
तड़पत रह जाऊं भोगों से, पी पर सब कुछ वारुं ।।
तीर्थ शिवोम् सजन बिन मोहे, पल भर चैन न आवे ।
रोवत कलपत नीर बहावत, प्रियतम पंथ निहारुं ।।

(२५)

विरह-राग-भैरवी ताल – केहरवा

मनप्रीत जगी प्रभु प्रियतम की ।
अन्तर विरहा अगन लगी है, आस लगी है प्रियतम की ।।
मुख में हरदम नाम प्रभु का, हिरदय भाव बना है ।
नयनां हर पल प्रियतम खोजत, मूरत मन में प्रियतम की ।।
आए कोई बताए मुझको, मारग कौन कहां जाना ?
कैसे खोजूं घर मैं उसका, कौन गली है प्रियतम की ?
मेरा प्रियतम अलख अनन्ता, अगम है पारावार नहीं ।
कैसे पाऊं दर्शन उसका, तृष्णा मोहे प्रियतम की ।।
तीर्थ शिवोम् पड़ी दुविधा में, काय करूं, कहां जाऊं ?
नीदं भूख न लागे मोहे, रीस उठै है प्रियतम की ।।

(२६)

व्यथा - राग अभोगी ताल - दादरा

मेरे मन में तू समा जा, नयनन में आ के छा जा ।
तुझको पुकारूं प्रियतम, प्रभु आ तू आ तू आ जा ।।
जग में हूं भूली फिरती, मुझे पूछता न कोई ।
तेरे ही आसरे हूं, आ कर गले लगा जा ।।
आखों से नीर बरसे, पाओं है मेरा थिरके।
हिरदय है मेरा धड़के, ढारस तू आ बंधा जा ॥
कोई नहीं है अपना, कहने को भी न अपना ।
इक तू ही मेरा अपना, आकर दर्श दिखा जा ।।
तुझको तो हैं हजारों, मुझको तो एक तू है ।
इक तू ही मेरा प्रियतम, मन में तू ही समा जा ।।
हूं मूढ़ नाच पापी, शिव ओम् मैं पुकारूं ।
दर पर तेरे पड़ी हूं, आ कर मुझे उठा जा ।।

(२७)

अन्तर्व्यथा - राग - विलास खानी ताल - केहरवा

काय करूं ? प्रियतम नहीं मानत ।
पायं पड़त मनाय रही मैं, वह मन में नहीं आनत ।।
हौं तो कुटिल कुबुद्धि नारी, भूली पिया निरन्तर ।
अब तो मनवा पी सों लागा, नहीं दूसरा जानत ।।
साधन करूं तपस्या भारी, पीया रीझे मोरा ।
अब लौं सफल मनोरथ नाहीं, जल को रही मैं छानत ।।
कोई बताए मारग मो को, क्यों कर पिया मनाऊं ।
बिन पाए मन चैन न पाए, यही हृदय में ठानत ।।
तीर्थ शिवोम् कृपा गुरुदेवा, शरण पड़ी ही तुमरे ।
देयो दिखाए पिया मो को, वह तो नाहीं मानत ।।

(२८)

व्यथा - राग- पीलू - ताल - भजनी ठेका

मेरो श्याम गयो है कौन गली ।
कोई बताओ सखियन मो को, ढूण्डन श्याम चली ।।
मेरो श्याम है मेरो साथी, पल भर साथ न छोड़े ।
मैं तो श्याम की होय चुकी हूं, खोटी चाहे भली ।।
मुझको श्याम बतायो नाहीं, चुपके कहां गयो है ।
यह मुझको अच्छो न लागत, मन के माहीं खली ।।
रोऊं तड़पूं नीर बहाऊं, मन मानत है नाहीं ।
श्याम बिना मनवा अकुलाए, श्याम ही पास चली ।।
तीर्थ शिवोम् श्याम बिन मोरा, मन है लागत नाहीं ।
श्याम पास तो मोरा मनवा, खिलता कली कली ।।

(२६)

व्यथा राग - भटियार ताल- धुमाली

प्रेम छिपाए छिपत है नाहीं ।
नयनन नीर बहत है अविरल, भाव रहत मन माहीं ।।
मुंह से बोलत है कुछ भी न, नयन प्रकट कर देते ।
ऊठत बैठत आह भरत है, छिपत प्रेम है नाहीं ।।
खोजत रहत सतत प्रियतम को, मिथ्या जग के भीतर ।
प्रियतम प्यारा कहां छिपो है, माया भ्रम के माहीं ।।
करत पुकार है मन ही मन में, प्रभु मिलन के ताईं ।
कब मिलसी मेरा प्रियतम आए, टीस उठत मन माहीं ।।
तीर्थ शिवोम् दशा यह प्रेमी, तड़पत हरदम रहता ।
नींद न प्यास न भूख उसे कुछ, आश लगी मन माहीं ।।

(३०)

विरह - राग - अहिरी तोड़ी ताल - केहरवा

पति मिलन का समय अनोखा, मन में रमणी सोच करे ।
न जाने पी काय करेगा, उथल पुथल मन सोच धरे ।।
योवन बीता, बीत गयो है, निकल बुढ़ापा भी जाय ।
सोचत रहत यही है रमणी, निश्चय मन में नाहीं करे ।।
यह जीवन तो आवन जावन, कोई भी थिर है नाहीं ।
काचे माट न ठहरे पानी, मृत्यु सन्मुख आन परे ।।
उठ री रमणी पिया मिलन को, विरथा सोच रही काहे ।
पीया बुलावत तोहे सजनी, अब तो मन में धीर धरे ।।
प्रातः उठत है सांझ को शैया, जीवत रही काहे ।
अब तो पीव मिलन की बेला, मन को थिर क्यों नाहीं करे ।।
तीर्थ शिवोम् हे पगली रमणी, जौबन बीतत जाता ।
कब तक देखत कब तक सोचत, सेजे ऊपर नाही परे ।।

(३१)

विरह - राग - अहिर भैरव

कट गया जीवन विरथा मोरा, काय करूं कुछ सूझत नाही ।
कुछ विषयन में, कुछ भोगन में, आवत पी को देखत नाही ।।
मन की मन में रह गई आशा, भई न पूरी यूं ही रह गई ।
राम मिला, न राह मैं जानी, कोई मुझे समझावत नाहीं ।।
पी बिन रह गई, एक अकेली, पी बिन जियड़ा लागत नाही ।
रह निहारत जीवन निकला, पीव तो मोरा आवत नाहीं ।।
जगत को जाए है मन कबहूं, पीयहि ताकत कबहूं रहता ।
इधर उधर ही जीवन काटा, हाथ तो कुछ भी आवत नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् री मोरी सजनी, पी आए कह दीजो ऊ के ।
राह निहारत चली गई वह, तुम तो अजहूं आवत नाही ।।

(३२)

विरह - राग - मिश्र पीलू ताल - दादरा

प्रभुजी माया प्रबल रचाई ।
जब लौं कृपा तुम्हारी नाहीं, तब लौं छूट न पाई ।।
मुनि जति सब ही उरझाए, कोई छूट न पाया ।
सभी रहत भरमाए इसमें, रहत सदा दुख पाई ।।
काम क्रोध मद लोभ न डूबा, ऐसा को है जग में ।
रचे पचे सगले जग विषयन, निकल सकत न खाई ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे भगवन्ता, सुनो विनय हे स्वामी ।
किरपा एक सहारा तुमरा, तो ही माया जाई ।।

(३३)

विरह - राग - मिश्र तोड़ी ताल - धुमाली

न तरसाओ बालमा, मैं तो प्रेम दीवानी ।
दर्स तेरे की भूखी हूं मैं, करत रही नादानी ।।
कण कण माहीं तुमरा वासा, पालक अन्तर्जामी ।
मेरे मन को हो तुम जानत, हूं मैं निपट अजानी ।।
पड़ी जगत में गोते खाऊं, राह तुम्हारा भटकी ।
क्रोध लोभ भवसागर डूबी, बनत रही अभिमानी ।।
मन की चाह मिलन की मोरे, झटक सभी संसारा ।
तोहे संग समाऊं प्रीतम, छोड़ जगत बदनामी ।।
तीर्थ शिवोम् हूं दासी तेरी, बीच जगत मैं उलझी ।
अब तो कृपा करो हे प्रीतम, पद पाऊं निर्वानी ।।

(३४)

विरह – राग- भैरवी ताल - केहरवा

याद प्रभु में नयनां बरसें, रिमझिम रिमझिम रिमझिम ।
बना प्रवाह निरन्तर रहवे, रिमझिम रिमझिम रिमझिम ।।
आहें भरुं याद में तेरी, तड़प कलेजा जाता ।
छाया प्रभु हृदय के माहीं, रिमझिम रिमझिम रिमझिम ।।
रात दिवस मैं घूमत रहती, चैन न पल भर मोहे ।
ऊठत बैठत नाम तेरा ही, रिमझिम रिमझिम रिमझिम ।।
कभी पूछती वृक्ष लताएं, कभी नदी दरियाओं ।
कब आवेगा प्रीतम मोरा, रिमझिम रिमझिम रिमझिम ॥
तीर्थ शिवोम् हे निष्ठुर बलमा, राह तकत नित तेरा ।
रोऊं मैं कुरलाऊं निसदिन, रिमझिम रिमझिम रिमझिम ।।

(३५)

विरह - राग - भैरव ताल - त्रिताल

प्रात भयो पर पी नहीं आए ।
जागत जागत रैण विहाणीं, पी नहीं दर्श दिखाए ॥
हिरदय ध्यान धरत प्रीतमहिं, मनवा ताही लागा ।
बिछुड़ा पीव, उजड़ गई दुनियां, पीर कलेजा खाए ॥
पी बिन मोहे चैन पड़त न, कुछ नहीं अच्छो लागे ।
मन तरसे पी मिलने ताई, पी मुख मनहिं छाए ॥
तीर्थ शिवोम् सुनो हे साजन, राह निहारुं तेरा ।
तुम बिन सूना हिरदय मोरा, याद तेरी नहीं जाए ।।

(३६)

पश्चाताप् -राग- भूप ताल - धूमाली

सोचत सोचत घबरावत हूं।
जब हूं देखत दिनन को बीतत, हिरदय अकुलावत हूं।।
गई बहारें, रुत भी बदली, सावन आए जाए।
मैं हूं मूढ़ बनी विषयन में, समझ नहीं पावत हूं।।
यौवन बीता, अन्तिम बेला, उमरिया जात बिहाए।
मैं हूं रही जगत में लागी, छीजत मैं जावत हूं॥
संत वेद समझाएं मो को, ज्ञान की बात बताएं।
मैं तो कुछ बनी हूं ऐसी, ज्ञान नहीं पावत हूं।।
कौन बताए मारग पी का, अन्तर्जोत जगाए।
हौं तो चादर तान के सोई, जाग नहीं पावत हूं॥
तीर्थ शिवोम् हूं ऐसी पापिन, मूरख कुटिला नारी।
पूछे कोई मुझको कितना, कह न कुछ पावत हूं॥

(३७)

विरह - राग - भीम पलास ताल - दादरा

जा मन अन्तर पीड़ा लागी, जानत है मन सोई।
मन जा अन्दर पीड़ा नाहीं, जान सकत न सोई।।
पीड़ा लागे अन्तर मीठी, रोवत रहत सिसकता।
पर या में सुख ही माने, सुख जानत जन सोई।।
हे प्रभु मोहे पीड़ा दीजो, पीय मिलन की मन में।
पीड़ा का आनन्द उठाऊं, लागत मीठी सोई।।
तीर्थ शिवोम् वियोग की पीड़ा, मारग पीय मिलन का।
दर्श कराये, जगत छुड़ाए, धन्य जीव तब सोई।।

(३८)

विनय - राग - भीम पलास ताल - धुमाली

एक चिन्ता है यही बस, नाम तेरा मैं जपूं।
छोड़कर सारे झमेले, भजन ही इक मैं करूं।।
कुछ न होय मेरी चिन्ता, जब तू चिन्ता न करे।
जो चाहे तो ही होय, भजन ही इक मैं करूं।।
तार डारे तुम अनेकों, बार मेरी देर क्यों।
क्यों नहीं करते कृपा हो, भजन ही इक मैं करूं।।
तीर्थ हे शिवओम् गुरुवर, कर कृपा मुझ पर प्रभु।
मैं करूं सेवा तुम्हारी, भजन ही इक मैं करूं।।

(३६)

विरह - राग - मिश्र पहाड़ी ताल- दादरा

छूओ अगनी जान अजाने, वह तो देत जलाए।
जैसे राम नाम हरि सिमरन, भव जल पार कराए।।
धरती बीजा आप गिरे या, चाहे उसे गिराओ।
वह तो उगता, फल है देता, देता भूख मिटाए॥
राम नाम ही राम मिलावे, मनवा निर्मल करता।
उलटा सीधा, ऐढ़ा टेढ़ा, भव बंधन कट जाए।।
राम सिमर लो, राम सिमर लो, राम करे विस्तारा।
राम नाम सगले दुख मेटे, राम नाम मन लाए॥
तीर्थ शिवोम् हे पापी मनवा, राम सहारा पकड़ो।
राम नाम ही सकल सहाई, दुविधा मन की जाए॥

(४०)

विनय- राग - जोगिया ताल - केहरवा

नयन उघाड़ो प्यारे प्रीतम, दासी सन्मुख आय रही ।
छोड़ जगत माया तृष्णा, आशा तुमरी, आय रही ।।
पता नहीं है क्या यह तुमको, जग में कितना दुख पाया ।
ताही डर है लागे जग सों, ता से मैं घबराय रही ।।
नयनन फेरे, पी बिसराया, यह ही चूक भई है ।
किस मुंह तो से बात करूं मैं, ता ते मैं शरमाए रही ।।
तीर्थ शिवोम् दया के सागर, चूक नहीं मन में दीजो ।
छमा छमा हे मोरे प्रभुजी, चरणीं विनय गुजार रही ।।

(४१)

विनय - राग - भूप ताल - केहरवा

धुन्ध है छाई मेरे अन्दर, देत दिखाई कुछ नाहीं ।
नित्यानित्य विवेक नहीं है, रुप - नित्य का कुछ नाहीं ।।
परदा माया आया ऐसा, माया ही बस दिखे मुझे ।
माया हटे न धुन्ध छटे यह, मन निर्मलता कुछ नाहीं ।।
हे कैसे प्रभु धुन्ध हटे यह, कैसे मन निर्मल होवे ।
कैसे आय मिले पी मोरा, मारग सूझत कुछ नाहीं ।।
कृपा तेरी बिन हे प्रभु मोरे, मन की आश नहीं पूरी ।
तभी हटे मन भोग - विषय से, होत जतन से कुछ नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् कृपा रघुवीरा, शक्ति सर्व प्रदाता ।
मो गरीब पर दया करो, है गुण तो मो पह कुछ नाहीं ।।

(४२)

विनय - राग - मारू विहाग ताल - केहरवा

हौं तो श्याम भई मतवारी ।
जैसे तारे जीव अनेकों, मैं भी इक मतवारी ।।
भागत आओ, वेग करो जी, रही पुकारत तोहे ।
लेओ बचाए भव जल मोहे, रही डूबत मतवारी ।।
पार करो प्रभु पार उतारो, जल में गोते खाऊं ।
कर न कुछ भी पाऊं मैं तो, रही उतरत मतवाली ।।
तीर्थ शिवोम् न देर करो प्रभु, समय बहुत ही थोड़ा ।
बीती जात उमरिया छिन छिन, विनय करत मतवारी ।।

(४३)

विनय - राग बिलावल - ताल दीपचंदी

आ गया हूं आ गया, मै दर पह तेरे आ गया ।
छोड़कर सारा जमाना, दर पह तेरे आ गया ।।
देखकर दुनियां तुम्हारी, दिल तो मेरा भर गया ।
कुछ नहीं रखा है जग में, दर पह तेरे आ गया ।।
अब बुला ले या भगा दे, मैं तो तेरा हो गया ।
मन भी है, तन भी हवाले, दर पह तेरे आ गया ।।
तू दयाला, तू कृपाला, यह ही सुनते आए हैं ।
कर कृपा, अपना बना ले, दर पह तेरे आ गया ।।
मैं तो टल जाने का नाहीं, दी रमा धूनी यहीं ।
दर तेरा ही मेरा घर है, दर पह तेरे आ गया ।।
अब पड़ा शिव ओम् दर पह, मन में है आशा लिए ।
दर खुलेगा एक दिन तो, दर पह हूं मैं आ गया ।।

(४४)

विनय - राग - शिवरंजनी ताल - केहरवा

राज न चाहूं न ही मुक्ति, प्रेम तुम्हारे चरणों में ।
प्रेम रसीला सुख है देता, पड़ा रहूं मैं चरणों में ।।
सारे जग में तोहे निहारुं, दूजा मोहे न दीखे ।
हरदम तेरा नाम जपूं मैं, प्रीति तेरे चरणों में ।।
वाणी तेरी मन भावन है, हरती मन के पापों को ।
मन की आशा तृष्णा सब ही, अर्पण कर दूं चरणों में ।।
अधम नीच हैं दुआरे ठाढ़ा, मांगे शरण तुम्हारी वह ।
पापी दम्भी पाखण्डी है, आन पड़ा है चरणों में ।।
तीर्थ शिवोम् कृपा मैं मागूं, मन में भक्ति भाव भरो ।
दीन यह अब तो शरण पड़ा है, मांगे ठौर वह चरणों में ।।

(४५)

विनय- राग- तोड़ी ताल - रूपक

क्या करूं मैं क्या करूं, मेरे प्रभु मैं क्या करूं ।
जगत यह जीने न दे, तू ही बता मै क्या करूं ।।
मन मेरा अपना भी नाहीं, शुद्ध निर्मल है बना ।
वासनाएं घर किए हैं क्या उपाय क्या करूं ।।
भटकता रहता है मनवा, चैन पल भर का नहीं ।
हर समय चंचल बना है, कैसे रोकूं क्या करूं ।।
उम्र बीती, लड़ते लड़ते, पर न हारा मन मेरा ।
टूटने को अब है धीरज, किससे पूछूं क्या करूं ।।
हे प्रभु सुन अर्ज मेरी, हूं दुआरे आ पड़ा ।
तू बचाए जीव को, तू ही बताए क्या करूं ।।
तीर्थ यह शिवओम् अब, जाए तुझे न छोड़ कर ।
इक तेरा मुझको सहारा, जानता न क्या करूं ।।

(४६)

विनय - राग - दरबारी ताल - केहरवा

क्या क्या तुम्हें सुनाऊं राम ।
मन में पल भर चैन नहीं, क्या क्या तुम्हें बताऊं राम ।।
जग तुमरा जंजाल है भारी, रहे समस्या हरदम ही ।
कोई भी तो सुलझ न पाती, तुमसे नहीं छुपाऊं राम ।।
कोई सुननेहार नहीं है, हंसी करे सभी जन ही ।
कौन बताए तुम्हें सभी यह, किससे तुम्हें कहाऊं राम ।।
कोई सूझ पड़े न मुझको, कैसे तुमको क्या कहना ।
मन में सोच रही हूं मैं तो, कैसे तुम्हें मनाऊं राम ।।
तुम बिन अपना है न कोई, सुखदाता रक्षक तुम ही ।
तुम को छोड़ कहां मैं जाऊं, कैसे तुम्हें हटाऊं राम ।।
तीर्थ शिवोम् शरण में आई, मारो चाहे पार करो ।
अब तो मैं हो गई तुमरी, क्यों कर तुम्हें भुलाऊं राम ।।

(४७)

विनय - राग - पहाड़ी ताल - केहरवा

नदिया के साथ साथ मैं, बहता चला गया ।
पल भर भी रुक न पाता, बहता चला गया ।।
जग भी है एक नदिया, युग है प्रवाह इसका ।
बहना न चाहे फिर भी, बहता चला गया ।।
आए हजारों ज्ञानी, साधन करें अनेकों ।
कोई भी बच न पाया, बहता चला गया ॥
मैं क्या करूं उपाय, बहना न चाहूं इसमें ।
अब तक समझ न आई, बहता चला गया ।।
गुरुदेव ही सम्भाले, है पार वह उतारे ।
नाहीं तो जगत सारा, बहता चला गया ।।
शिवओम् हे गुरुवर, मुझ पर कृपा हो तेरी ।
उलझा जो जीव जग में, बहता चला गया ।

(४८)

विनय -राग - मिश्र काफी

यह समुन्दर रेत का है, मैं रही रस्ता हूं भूले ।
रात है काली भयानक, मन रहा शंकाओं झूले ॥
उठ रहा तूफान भारी, रेत नयनों आ गिरे है ।
रास्ता कोई न सूझे, मैं रही भूले से भूले ।।
यत्न करती हूं मैं कितना, संभल मैं पाती नहीं ।
क्या करूं सूझे न कुछ भी, राह न पाती हूं भूले ।।
पाओं भी है डगमगाए, मन हुआ मेरा है चंचल ।
धीर टूटे जाए मेरा, मैं रही भूले की भूले ।।
यह विनय शिव ओम् अब तो, हे प्रभु आओ बचा लो ।
मैं ही नारी दुःख की मारी, मैं गई रास्ता हूं भूले ॥

(४६)

विनय -राग बिलावल - ताल - केहरवा

मैं हूं शरण तिहारी आया, माया ने भटकाया ।
माया काया बहु भरमाया, सूझ न कुछ भी पाया ।।
माया कौतुक करे अनेकों, छलत रही जीवों को ।
जो जब तुमरी शरण में आया, वह इससे बच पाया ।।
मनवा चंचल बना जगत में, डोलत विषयन माहीं ।
थिरता पावें वह ही मनवा चरणीं तुमरी आया ।।
मैं हूं भटका बीच जगत में, चंचल बना उछलता ।
जब तक शरण तुमारी नाहीं, मन को चैन न आया ।।
तीर्थ शिवोम् मैं पाँय लागूं, तुमरा नाम उचारुं ।
सेवा तुमरी करत निरन्तर, तुमरे द्वारे आया ।।

(५०)

विनय- राग-मदमाद सारंग ताल - केहरवा

सारा जग मैंने छोड़ दिया, अब दर तेरे पह आए गई ।
सब से है नाता तोड़ लिया, घर तेरे पह हूं आय रही ।।
जग देख लिया, पहचान लिया, जग में तो कोई सार नहीं ।
जग से तो मुंह को मोड़ लिया, जग से तो हूं मैं जाय रही ।।
अब जाना कहां किधर जाना, तेरे बिन दूजी ठौर नहीं ।
जग में तो केवल दुख ही है, जग से तो मैं सुख पाय रही ।।
अब पल्ला तेरा पकड़ा है, छुड़वा न लेना कहीं इसे ।
फिर किसका पल्ला पकडूं मैं, पाना था पल्ला पाय रही ।।
तेरे ही दम से दम मेरा, तेरे दम बिन, मैं बेदम हूं ।
जग में दूजा दमदार नहीं, दम पाना था सो पाय रही ।।
शिव ओम् कहूं क्या मैं तुझसे, साजन प्रियतम तुम ही तो हो ।
बस करना नहीं निराश मुझे, कहना अपना कह पाय रही ।।

(५१)

विनय - राग भैरवी ताल - केहरवा

नयन मेरे पर नयनहीन हूं, जीव बनी अज्ञानी मैं ।
पग पग गिरती उठती चलती, क्या सूझे अंजानी मैं ।।
कुछ भी बूझ न पाऊं मारग, किधर कहां को है जाना ।
ऐसा मूढ़ बना मेरा मनवा, ऐसी हूं अभिमानी मैं ।।
ध्यान धरूं पर मन न लागे, चंचल जग में बना रहे ।
करत दिखावा ध्यान भजन का, बनी हूं ऐसी ध्यानी मैं ।।
क्या करना क्या नाहीं करना, कुछ भी जानत हूं नाही ।
ग्यान नहीं अभिमान करत हूं, बनती जग में ज्ञानी मैं ॥
तुम ही राह दिखावन हारे, तुम ही तो प्रतिपालक हो ।
जानूं नहीं किसी दूजे को, हूं तो निपट नदानी मैं ।।
तीर्थ शिवोम् शरण में आई, तुम सर्वस्व प्रभु मोरे ।
हूँ तो पापी नीच घमण्डी, जग में रही दुखानी मैं ।।

(५२)

विनय -राग- बिलावल ताल - धुमाली

हौं तो शरण पड़ी हूं तेरी, कृपा करो भगवान ।
हूं तो चाकर प्रभुजी तोरी, रीझो कृपा निधान ।।
जग में न कुछ भावे मो को, मन तोही रंग राता ।
ऊठत बैठत ध्यान धरूं हूं, छुटे वेद पुरान ।।
रात अंधेरी, न कछु सूझे, खोजत राह रही मैं ।
होय उजाला, सूझ पड़े कुछ, हो अन्तर में ज्ञान ।।
तुम ही मेरे पीव कन्हाई, तुम ही संग सखा हो ।
तुम बिन और न जानूं दूजा, तुम ही जान जहान ॥
आन पड़ी हूं तुमरे द्वारे, अशरण शरण मुरारी ।
अब तो राखो लाज प्रभुजी, आई छोड़ गुमान ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो बनवारी, हे भक्तन हितकारी ।
हर लो मन की पीड़ा प्रियतम, होय रही बेमान ।।

(५३)

विनय - राग - कोमल ऋषभ आसावरी - ताल - केहरवा

प्रभुजी कृपा करत क्यों नाहीं ?
मैं हूं पड़ी दुआरे कब से, देखत हैं क्यों नाहीं ?
पूजा पाठ योग- जप संयम, कर कर मैं थक हारी ।
अब हूं नहीं पसीजे प्रियतम, दया करत क्यों नाहीं ?
न तुम खोलत, न झांकत हो, भूल हुई क्या मुझसे ?
मुझे बताओ कुछ तो प्रभुजी, खोलत काहे नाहीं ?
अन्दर गए अनेकों जन ही मैं बाहर ही ठाड़ी ।
अब तो पीर हरो प्रभु मोरी, मुझे बुलावत नाहीं ।
तीर्थ शिवोम् सुनो गिरधारी, अब तो रहा न जाए ।
विनय सुनो दुखियारी की अब, क्यों तुम सुनत हो नाहीं ?

(५४)

विनय - राग - भैरवी ताल - केहरवा

मैं पंछी, तेरा रूप अकाश समाना ।
आदि अन्त कुछ दीखत नाहीं, उड़ता फिरता अजाना ।।
तू बे - अन्त अलौकिक प्रभुजी, करता - पुरुष जगत का ।
जीव बेचारा अंध कूप में, बन माया दीवाना ।।
उछले, कूदे, शोर मचावे, भेद की बात बतावे ।
न जाने, पर करे तमाशे, ऐसा मूढ़ नादाना ।।
जब तक तेरी किरपा नाहीं, भेद न कोई पावे ।
चाहे कूके, चढ़े चौबारे, तुझे नहीं पहचाना ।।
ज्ञानी ध्यानी, सब ही थाके, पुस्तक ध्यान में उलझे ।
अता पता न तेरा पाया, सब ही रहत अजाना ।।
तीर्थ शिवोम् कृपा प्रभु मोरे, पड़ा हूं तेरे शरणीं ।
पापी नीच घमण्डी हूं मैं, करत रहा अभिमाना ।।

(५५)

विनय - राग -मिश्र शिवरंजनी ताल - दादरा

आओ आओ आ भी जाओ, मैं पुकारत हूं तुम्हें ।
जगत बंधन से छुड़ाओ, कसम मेरी है तुम्हें ॥
सेज मन मन्दिर की मेरी, है पड़ी तेरे बिना ।
आ इसे आबाद कर दो, वासता देती तुम्हें ॥
मन बना चंचल भटकता,थिर न रह पाता कहीं ।
तेरे बिन थिरता कहां है, मैं बुला पाती तुम्हें ॥
तुम कहां छुप के हो बैठे, नजर न आते कहीं ।
सामने ही तुम जो होते, देख मैं पाती तुम्हें ॥
बिजलियां कड़के है मुझ पर, दुख के बादल हैं घिरे ।
भीगता तन इनसे मेरा, यह दिखा पाती तुम्हें ॥
बन रही लाचार मैं, शिव ओम् हूं तेरे बिना।
कुछ भी मैं तो कर सकूं न, मैं रिझा पाती तुम्हें ॥

(५६)

विनय - राग - मारू विहाग ताल - केहरवा

मंझधार में नैया मोरी है, प्रभु मोहे आय बचा लीजो ।
जल गहरा भंवर अनोखा है, आ अपना हाथ थमा दीजो ॥
आशा है और नहीं कोई, बस तुमरा एक सहारा है ।
हरि कृपा करो, प्रभुवेग करो, आ नैया पार लगा दीजो ।।
तुमरे ही शरण पड़ी हूं मैं, तुमरे चरणों की दासी हूं ।
तुमहि कर पुकार प्रभु, आ दुखड़ा मोर मिटा दीजो ।।
बलहीन बनी धीरज टूटा, आश भी सभी निराश हुई ।
दुखिया की यही गुहार प्रभु, आ दर्शन मोहे करा दीजो ॥
तुमरा ही दर पकड़ा मैंने, तुम पह ही आशा लगी मेरी ।
तुमरे बिन मेरा न कोई, आ मन की पीर मिटा दीजो ।।
शिव ओम् हृदय तड़पे मेरा, है मन में टीस उठे भारी ।
दर्शन की तेरे प्यासी हूं, आ मन की तड़प मिटा दीजो ।।

(५७)

विरय - राग - बिलावल ताल -दीपचन्दी

आ गया हूं आ गया, मै दर पह तेरे आ गया ।
छोड़ कर सारा जमाना, दर पह तेरे आ गया ।।
देखकर दुनीयां तेरी, है दिल तो मेरा भर गया ।
कुछ नहीं रखा है जग में, दर पह तेरे आ गया ॥
अब बुला ले या भगा दे, मैं तो तेरा हो गया ।
मन भी है, तन भी हवाले, दर पह तेरे आ गया ।।
तू दयाला, तू कृपाला, यह ही सुनते आए हैं ।
कर कृपा अपना बना ले, दर पह तेरे आ गया ।।
मैं तो टल जाने का नाहीं, दी रमा धूनी यहीं ।
दर तेरा ही मेरा घर है, दर पह तेरे आ गया ।।
अब पड़ा शिवओम् दर पह, मन में हैं आशा लिए ।
दर खुलेगा एक दिन तो, दर पह हूं मैं आ गया ।।

(५८)

विनय - राग - विलास खानी तोड़ी ताल - धुमाली

मैं पापी गुणहीन अजाना, तेरा पता न पाया ।
विषयन माहीं उमर गवाई, कुछ भी हाथ न आया ।।
तू अनन्त है अलख अगोचर, तू है दीन दयाला ।
जिस पर कृपा तेरी होवे, जान तुझे वह पाया ।।
मनवा धाए जग भोगों को, भटक भटक दुख पाए ।
तम में डूबा अंध कूप में, माया में भरमाया ।।
कौन दिखाए मारग मनवा, तम से कौन निकाले ।
बिन किरपा गुरुदेव प्रभु की, कोई निकल न पाया ।।
सद्गुरुदेव निकालो मुझको, द्वारे आन पड़ा हूं ।
हूं तो पामर नीच घमंड़ी, उलझा माया काया ।।
तीर्थ शिवोम् शरण में आया, देख लिया जग सारा ।
सद्गुरुदेव मेरे रखवाले, छूटे जग की माया ।।

(५९)

विनय राग- कोमल रिषभ आसावरी ताल - केहरवा

प्रभु जी मैं हूं शरण तिहारी ।
जग को जान के माया मिथ्या, चरणन पर बलिहारी ।।
माया बंधन जकड़ रही हूं, अपने छूट न पाती ।,
किरपा जब तक तुमरी नाहीं, भंवर पड़ी बेचारी ।।
और भरोसे सब ही छोड़े, तैरा दर ही पकड़ा ।
तुमरा नाम जपूं दिन - राती, हरो मेरी लाचारी ।।
दीन दयाल प्रभु गिरधारी, तुम - सा दूजा नाहीं ।
दुखिया का दुःख दूर करो, मैं हूं अति दुखारी ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो प्रभु मोरे, तुम अनन्त भगवन्ता ।
मैं तो हूं दुख की मारी, अर्ज करूं बनवारी ।।

(६०)

विनय – राग- बागेश्री ताल - केहरवा

तुझे ढूंढते है, तुझे खोजते हैं, न पाया पिया को कहीं पर कभी भी ।
न घर ही मिला न मिला रास्ता ही, पता न ठिकाना, कहीं पर कभी भी ।।
गुजारी उमरिया है तेरे लिए ही, रहे जपते माला, तेरे नाम की ही ।
न आया तरस तुझको हम पर कभी भी, दरस न कहीं पर कभी भी ।।
है तीरथ नहाए, बहुत नाक रगड़े, कि दूर दूर जगत में रहे हम भटकते ।
नहीं सार पाया जगत में है कुछ भी, हुए सामने न, कहीं पर कभी भी ।।
बता अब तू ही हे प्रभु हम करें क्या, कि पा जाएं दिल में तुम्हें सामने ही ।
तड़पता भटकता है मन सोचता है, मिले हमको प्रियतम कहीं पर कभी भी ।।
प्रकट हो ठिकाना कृपा हम पर भी, बता हमको रस्ता भी घर आपने का ।
कि कर मिलें हम तेरे घर प्रभुजी, जाएं पहुंच हम भी कहीं पर कभी भी ।।
कि शिवओम् करता विनय यह है तुमसे, कि लाचार पापी हैं भटके हुए हम ।
नहीं दूसरा, राह पर जो लगाए, मिले चैन मन को, कहीं पर कभी भी ।।

(६१)

विनय - राग - मिश्र पीलू ताल - दादरा

कहां खोजूं मैं राम को जाए, घट घट माहीं लखा न जाए ।
कण कण में है रोम रोम में, व्यापक राम पकड़ न आए ।।
खोजत खोजत ज्ञानी ध्यानी, यत्न करत सब ही थक हारे ।
पता ठिकाना किसे न पाया, कुछ भी मारग समझ न पाए ।।
राम अनन्त है अलख अनूपा, इंद्रिन वहां पहुंच न पाए ।
जीव रहा माया में उलझा, घर को कैसे खोज वह पाए ।।
मंदिर देखे तीरथ न्हाए, पुस्तक के पन्ने पलटाए ।
अन्दर राम मिले क्यों बाहर, बिरथा जीवन दिवस गवाए ।।
चंचल मनवा राम न खोजे, फिर फिर वह विषयन को धाए ।
सद्गुरुदेव करे जो किरपा, वह ही बेड़ा पार लंघाए ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, तुम बिन रस्ता कौन दिखाए ।
जग में एक तुम्हीं को देखा, जो बिगड़ी को देत बनाए ।।

(६२)

मन -राग - मिश्र खमाज ताल - दादरा

मोहे देयो बधाई आज, कि पीया घर आयो है ।
मेरो मन हर्षित है आज, जनम का फल पायो है ।।
रही मैं बिछुड़ी आहें भरती, रही विचार अनेकों करती ।
मेरी सेज हुई आबाद, पिया का गुण गायो है ।।
सखियों नाचो, सखियों गाओ, मन आनन्द मनाओ ।
मेरा साजन आयो आज, कि मै मन सुख पायो है ।।
रास रंग बहु होवन लागे, खिले फूल फुलवाड़ी ।
मेरो सगले सुधरे काज, कि पी हिरदय लायो है ।।
अब तो मन आनन्द समाया, आशा तृष्णा त्यागी ।
मोरा अंग अंग फड़कत, कि मनवा रस आयो है ।।
तीर्थ शिवोम् पिया रंग राती, रंग अनूठा लागा ।
अब उतरत नाहीं जात, रंग गहरा पायो है ॥

(६३)

मन- राग - पहाड़ी ताल - केहरवा

जब श्याम की बंसी बाजत है, मन धीर धरा जाए नाहीं ।
तब मनवा ताही धावत है, मन जग में भरमाए नाहीं ।।
अन्तर धारा है रुक जाती, चंचलता भी तब मूक भयी ।
मन थिर होए वंशी पर ही, विषयन में तब जाए नाहीं ।।
वंशी की तान अनूठी है, है बांधे जग को अपने में ।
भटकन उछलन तरसन छूटे, पर बाहर मन धाए नाहीं ।।
वंशी सुनने की पीड़ा में, रहता हिरदय हरदम व्याकुल ।
जब तान सुनाई न देवे, तब चैन हृदय आए नाहीं ।।
शिवओम् रहूं बस सुनती ही, वंशी की तान निराली जो ।
मन मेरो मोहित कर लीनों, मन और कुछ भाए नाहीं ।।

(६४)

विनय - राग - देवीगिरी बिलावल ताल - त्रिताल

मनवा चाले उलटी चाल ।
जा तन पर यह गर्व करत है, माया लिपटी खाल ।।
करना था हरि सिमरन निसदिन, जगत विषय ही लागा ।
विषयन में है भ्रम विस्तारा, पड़ा काल के गाल ।।
स्वारथ तो ही जीवन बीता, उचित न अनुचित देखा ।
जतन यही वह करता रहता, कैसे मिले यह माल ।।
चाले नही प्रभु के मारग, जग मारग ही चाले ।
चाल यही तो उलटी उसकी, कितना ही बदहाल ।।
संत कहें समझाएं वा को, सीख न कोई माने ।
हठी बना निर्लज्ज है ऐसा, उलझा माया जाल ।।
तीर्थ शिवोम् हे मेरे मनवा, उमरिया निकलत जाए ।
कब तक बना रहेगा ऐसा, छोड़ जगत जंजाल ।।

(६५)

मन -राग - कलावती ताल - केहरवा

जग की गाड़ी चले निरन्तर, साथे मनवा भागे ।
गाड़ी से भी आगे आगे, निकलन चाहे आगे ।।
यह गाड़ी तो खेल खिलावे, भ्रम माया उपजावे ।
लोक कल्पना परगट होती, कर्म है अन्तर जागे ।।
इस माया में लगकर मनवा, चंचल अति हो जावे ।
मोहित भ्रमित हुआ माया में, माया में मन लागे ।।
चैन न पावे पल भर मनवा, अस्थिर बना ही रहता ।
कितना इसे दबाओ फिर भी, उछल उछल कर भागे ।।
सुखी न मनवा होत कभी भी, दुख में ही दिन काटे ।
सुख को धाए दुख को पाए, दुख में दुख ही लागे ।।
तीर्थ शिवोम् यह मनवा, ऐसा करे न करने देता ।
न बैठे न बैठन देवे, करन उपद्रव लागे ।।

(६६)

विनय- राग - कौशिया ताल - केहरवा

जागो जागो मनवा जागो, राम भजन की वेला आई ।
सोवत सोवत माया माही, अपनी तूने उम्र गवाई ।।
राम ही पालक जग सारे का, राम ही जीव सम्भाले ।
भागत आवत सुनत विनत वह, दीन पुकार सुनत है आई ।।
संत पुकारें वेद पुकारें, जग असार का सार बतावें ।
फिर तू क्यों न लगो भजन में, समय जात है निकलत जाई ।।
तीर्थ शिवोम् भजन में प्रभु को, भरा है सुखद आनन्दा ।
माया ममता जाए मन सों, दुविधा सब कट जाई ।।

(६७)

मन -राग - मिश्र पहाड़ी ताल - धुमाली

मूढ़ बना है मेरा मनवा, बात एक न माने ।
बंधा फिरे अभिमान में फिर भी, रहत है सीना ताने ।।
भया बावरा, क्रोध लोभ में, पाप पुण्य न जाने ।
स्वारथ डूबा जात रह्यो है, रहत न एक ठिकाने ।।
पापिन का सरताज बना है, अपने मन की जाने ।
शर्म लाज बाकी कछु नाहीं, मन की करत है ठाने ।।
मैं थाकी समझाए वा को, पर मूरख न माने ।
ठानी करता, मन की करता, देत हूं कितने ताने ।।
जो न माने करत सको क्या, रहत बना अनजाने ।
परखी मारन ताड़न युक्ति, पर वह बात न माने ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, सब कुछ तू ही जाने ।
आओ पार लंघाओ मोहे, तू ही पार कराने ।।

(६८)

विनय - राग - भीम पलास ताल - भजनी ठेका

माया रंग रंगा है मनवा, माया में ही डोले
माया में ही करे तामशे, माया माया बोले ।।
माया स्वांग बनाए अपना, माया वास करे वो ।
माया कह कह नाचन लागा, माया ही मुख खोले ।
माया साधन, माया भक्ति, माया भोग करे वह ।
माया तीरथ, माया विचरन, माया के रंग घोले ।।
माया मनवा रमा है ऐसा, भूला पालनहारा ।
सूझत माया, सोचत माया, माया खाए झोले ।।
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, माया रंग रंगे क्यों ।
माया छोड़ राम कर सेवा, माया बंधन खोले ।।

(६६)

मन - राग -केदार ताल - केहरवा

दुविधा तजि न पावे मेरो मन, दुविधा तजि न पावे ।
फंसा है जगत द्वन्द्व में ऐसा, निकल नहीं वह पावे ।।
क्या करना, क्या नाहीं करना कठिन है निश्चय करना ।
भूल भुलैया नित्य ही मनवा रहत रहा भरमावे ॥
लागे अच्छा एक दिवस कुछ, दूजे दिवस न लागे ।
ऐसी दशा भई क्यों मन की, समझ नहीं कुछ आवे ।।
हे प्रभु मोरे दया करो तुम, दुविधा नाठे मन की ।
हो उजियारा अन्तर माहीं, तम सारा छट जावे ।।
तुम हो मंगलदाता प्रभु जी, हरो अमंगल मोरा ।
थिर मन एक जगह हो मोरा, चंचलता सब जावे ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, शरण तेरी मैं आया ।
दुविधा हरो सकल मोरी, तुम मन थिरताही पावे ।।

(७०)

विनय -राग - जीवनपुरी ताल - केहरवा

मनवा अब तू क्यों पछताए ।
जीवन तूने यूं ही गंवाया, अब तू क्यों घबराए ।।
मद में चूर है यौवन बीता, विषय भोग के माहीं ।
सिर पीटे अब होवत है क्या, विरथा तू पछताए ।।
जब कोई तुझको समझाता, तब तू समझ न पाता ।
अब नाहीं समझावनहारा, जीवन दियो गवाए ।।
जैसे बादल आवत जावत, वर्षा करत है नाहीं ।
तैसे जीवन आवन जावन, कुछ भी हाथ न आए ।।
झांकत देखत बीता जीवन, बीत गया सो बीता ।
आगे की सुध अब भी ले तू, अब न समय गवाए ॥
तीर्थ शिवोम् कृपा गुरुदेवा, अब तक समय गवाया ।
अब तो ध्यान लगे चरणों में, जीवन बीता जाए ।।

(७१)

मन -राग - काफी ताल - त्रिताल

मनवा रहत है माया संग ।
माया ओढ़त, माया खावत, रचा उसी के संग ॥
माया माहीं खेलत कूदत, माया करत विचारा ।
बना उसी में रंग बिरंगा, करत उसी का संग ।।
माया संग यह छूटे कैसे, कैसे मुक्ति पाए ।
कैसे मनवा मनहिं व्यापे, कैसे दूर यह संग ।।
जब तक माया संग न छूटे, जीव सुखी न होवे ।
तब लौं मायाहिं लिपटाना, तब लौं माया संग ।।
माया ऐसा हाथ फिराया, सपने माया देखत ।
पर माया तो केवल छाया, चाहे कितना संग ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, माया संग छुड़ाओ ।
मैं तो दुखी हुआ अति भारी, संग बना बंदरंग ।।

(७२)

विनय- राग – कलिंगड़ा ताल - केहरवा

मनवा समझत काहे नाहीं ।
कब लगि मैं समझाऊं तोहे, गर्व करत मन माहीं ।।
धावत तू विषयन के पाछे, पावे दुख घनेरा ।
चंचल होकर भटक रहा तू, पर तू सुनत है नाहीं ।।
है जो होता तू नन्हा बालक, तोहे डांट पिलाती ।
पर तू बना फिरत है ज्ञानी, मानत को की नाहीं ।।
भटकत भटकत विरथा तूने, यूं ही उमर गंवाई ।
अब तो बीत चली है सारी, अब भी समझत नाहीं ।।
मनवा तू समझाए मुझको, पाछे लेत लगाए ।
मैं तो कुछ भी कर न पाऊं, बल विवेक कुछ नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् समझ रे मनवा, काहे जनम गंवाए ।
हरि भजन ही सुख का दाता, विषयन है सुख नाहीं ।।

(७३)

मन - राग - बहार ताल - एकताल

नाचत गावत मोर पपीहा, बन हरियाली छाई ।
मोरे मन आनन्द भरो है, पाती पी की आई ॥
जगत सुहाना दीखन लागा, कागा सुन्दर दीखें ।
भया कुरुप भी मधुर मनोहर, सर्व मधुरता छाई ।।
जब मन प्रेमानन्द उभरता, सब जग लागे मीठा ।
मीठा काला, मीठा गोरा, दीखत सुन्दरताई ।।
पढ़कर पाती प्रेम पिया की, उछलत मनवा मोरा ।
पी मोरा अब आवन को है, ठण्ड कलेजे छाई ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभु हे सजना, वेग करो आवन को ।
बीते दिन है कठिन विरह के, सोई प्रीत जगाई ।।

(७४)

विनय - राग - राग दुर्गा ताल - केहरवा

असुर मन, सुर में कैसे आवे ।
रहत सदा ही जग में लागा, समझ नहीं कछु पावे ।।
क्या मैं करूं उपाय उसका, सूझ पड़त न कोई ।
क्यों कर रास करूं मन अपना, कौन इसे समझाए ।
जतन अनेकों कठिन तपस्या, मैं तो कर कर हारी ।
पर मन काबू में न आवे, न हरि नाम धिआवे ।।
रहत भटकता, डोलत फिरता, सदा ही चंचल रहता ।
आपुन दुखी वह करता, पर थिर नहीं रहावे ।।
हे प्रभु मोरे शरण तेरी हूं, तुम ही करो उपाय ।
तेरे बिन दूजा न कोई, काबू कर जो पावे ।।
तीर्थ शिवोम् दुआरे आई, मैं फरियाद करत हूं ।
माया तृष्णा गर्व में डूबा, यह मन ठहर न पावे ॥

(७५)

मन – राग- केदार ताल - दादरा

छूटना चाहूं जगत से, छूट मैं पाती नहीं ।
मन रहा उलझा इसी में, मैं हटा पाती नहीं ।।
जगत को पकड़ा है मैंने, या कि इसने है कसा ।
यह भी गुत्थी सुलझती न, समझ मैं पाती नहीं ।
मन जगत में घूमता है, और जग मन में बसा ।
मन जगत का खेल सारा, मैं बचा पाती नहीं ।।
क्या करूं कैसे हटाऊं, मन जगत में जो रमा
यत्न मैं कर कर के हारी, मैं छुड़ा पाती नहीं ।।
सद्गुरु ही एक मारग, देत जो बंधन छुड़ा ।
जीव तो बेबस बना है, मैं बना पाती नहीं ।।
हे प्रभु तू, कर कृपा शिव ओम् तेरी शरण हूं ।
मन नहीं है बात सुनता, मैं मना पाती नहीं ।।

(७६)

विनय - राग – मालकौंस ताल - केहरवा

धीरज मन में मेरे आवे, देख तुम्हारी किरपा प्रभुजी ।
संत जनां के तुम हितकारी, दीन दयाल कृपालु प्रभुजी ।।
तू है अन्तर्यामी सबका, दाता सब जीवों का तू ही ।
देखत भूल न दीन जनों की, तुम हो पालनहार प्रभुजी ।।
मैं पापी अज्ञानी मनमुख, अनुचित उचित नहीं कुछ जानूं ।
तुम उदार परम हितकारी, बखशन हार तुम्हीं हो प्रभुजी ।।
विरद तुम्हारा देख के मैं तो, मन में हर्षित हूं अति भारी ।
राखो लाज हमारी अब तो, दयावान तुम ही हो प्रभुजी ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, क्षमाशील हो पापी जन पह ।
शरण तुम्हारी, द्वारे तेरे, पार करो हे प्यारे प्रभुजी ।।

(७७)

अशुद्ध- मन राग - भैरवी ताल - केहरवा

जगत वासना उलझा मनवा, बात करत है पीव मिलन की ।
साधन भजन करत है नाहीं, सोचत तो है हरि चरण की ।।
चंचल मनवा कर्म हैं दूषित, साध संग को नाही ।
माया है भरमाया हरदम, बात करत है भाव धरन की ।।
कैसे छूटे माया तेरी, कैसे मन थिरता पाए ।
क्यों कर आन मिले पी प्यारा, बात न केवल ध्यान धरन की ।।
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, कथनी त्याग करे करनी ।
तो हो पीव प्यारा पाए नहीं, है केवल बात करन की ।।

(७८)

विनय - राग - कामोद ताल - धुमाली

छिन्न भिन्न ज्यों वायु करती, विषय करत हैं मन को भी ।
जैसे विकृत जल है करता, व्याधि करती तन को भी ।।
विषयों की आंधी जब आती, डोल है मनवा जात तभी ।
झुक जाता है भोगों ताईं विहवल करता मन को भी ।।
दुख ही दुख जब आ जाते हैं, और अंधेरा छा जाता ।
तब मनवा भी दुख पाता है, और क्षिप्त होता मन भी ।।
मन की ऐसी बुरी दशा है, ठीक न कर पाता कोई ।
दुख सुख को मन भोगत रहता, चंचल हो जाता तन भी ।।
मन ऐसे न हो परभावित, वना अडोल सदा रहवे ।
आनन्दित रहता है सोई, सुख अतीव पाता मन भी ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो भगवन्ता, किरपा अपरम्पार तेरी ।
जीव छूटता बंधन से है, मुक्ति पाता है मन भी ।।

(७९)

अशुद्ध मन - राग- कलावती ताल- दीपचन्दी

मैं चला था वासना को, झटकने संसार में ।
पर मरी न एक भी तो, बलवती संसार में ।।
मैं रहा लड़ता ही लड़ता, कस के मैं अपनी कमर ।
पर गई है उमर मेरी, वासना संसार में ।।
वासना ऐसी है बैठी, जम के अन्तर में मेरे ।
निकलने का नाम न, बस वह रही संसार में ।।
क्या करूं, कैसे भगाऊं, अपने मन से मैं उसे ।
वह तो बैठी घर बना के, पसरती संसार में ।।
बिन कृपा गुरुदेव के, है वासना मरती नहीं ।
थक गया शिवओम् तीरथ, इससे है संसार में ।।

(८०)

विनय - राग - जैतश्री ताल - केहरवा

राज मिले त्रैलोकी का भी, फिर भी मन भरता नाहीं ।
आशा तृष्णा जात न मन से, मन बस तो करता नाहीं ।।
आशा डोर अति ही लम्बी, उसका अन्त कोई नाहीं ।
कितना भी कुछ मिले जीव को, लेने से डरता नाहीं ।।
तृष्णा उपजाती आशा को, आशा मन में जमी रहे ।
जब तक आशा बनी चित्त में, मन तो है मरता नाहीं ।।
जब तक मन में कर्म है संचित, आशा तो जाए नाहीं ।
जब हरि सिमरन कर्म क्षीण हो, तब उसका चलता नाहीं ।।
राम नाम ही आशा मेटे, शुद्ध करे जो है मन को ।
राम भजन जब होत रहत है, आशा दुखी करत नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् राम भज मनवा, आशा मन से दूर हटे ।
राम नाम ही एक सहारा, जीव दुखी होता नाहीं ।।

(८१)

मन - राग - काफी ताल - केहरवा

मनवा क्यों तू पड़ा मेरे पीछे ।
चैन घड़ी भर मोहे नाहीं, हरदम मेरे पीछे ।।
राम भुलाया, जग भरमाया, मोहे नाच नचाया ।
नाच नाच कर मैं थक हारा, फिर भी मेरे पीछे ।।
दूजा काम न कोई तोहे, चंचल फिरता भटके ।
न मैं भटंकू, तू भटकाए, रहत तू मेरे पीछे ।।
अब तो पीछा छोड़ भी मेरा, हुआ दुखी तुमसे मैं ।
पर तू पीछे पड़ा है ऐसा, रहत बना ही पीछे ॥
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, सुख न मिले तुम्हें भी ।
दुखी बना, दुख देता मोहे, लगा रहे बस पीछे ॥

(८२)

मन - राग - मारू विहाग ताल - त्रिताल

मनवा भटकत फिरत है काहे ।
एक घड़ी विश्राम न लेवे, चंचल बना तू काहे ।।
कभी इधर तो कभी उधर तू, बदले तू विषयन को ।
क्यों भरमाए धावत जग को, हरि सिमरन न काहे ।।
हरि नाम में थिरता पावे, सुख जीवन कट जाए ।
हरि नाम दुख काटन हारा, जपत हरि न काहे ।।
हरि प्रेम का स्वांग धरे तू, रुप अनेक बनाए ।
हरि प्रेम में दम्भ न चाले, हृदय प्रेम न काहे ।।
अन्तर भाव हरि सिमरन कीजे, तो होवे छुटकारा ।
गुरु की शरण गहो हे भाई, पाप कटे न काहे ।।
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, क्यों है भटक रह्या तू ।
गुरु मारग चल हरि सिमरले, पार न होगा काहे ।।

(८३)

मन - राग - अल्हैया बिलावल ताल - धुमाली

मनवा जगहिं रहत बसत है ।
बाहर भागे, ठहरत नाहीं, जगहि सैर करत है ।।
जब लगि प्राण बहिर्मुख होता, मन भी चंचल रहता ।
प्राण शक्ति से शक्ति पाता, मन की बात करत है ।।
कृपा बिना न शक्ति जागे, अन्तर आतम मुख है ।
तब लौं मन निर्मल न होता, नाहीं भोग तजत है ।।
चरण पड़ूं हूं अब मैं तुमरे, कृपा वृष्टि बरसा दो ।
होवे अन्तर - मुख मन मेरा, भ्रम को नाहीं तजत है ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो हे मनवा, अर्न्तमुखता सुख है ।
राम भजन में रमता जब मन, तब ही सुखी बहुत है ॥

(८८)

मन -राग - केदार ताल - रूपक

क्या करूं मन को मनाऊं, मानता मन है नहीं ।
कर रहा अपने ही मन की, वह तो सुनता है नहीं ।।
मैं हूं मन से तंग आया, रास्ता खोजू कहां ।
जिससे मन सीधा बने, वह जानता कुछ है नहीं ।।
अच्छा है क्या और क्या बुरा, उस को नहीं कुछ भी पता ।
किस तरह समझाऊं मन को, चाहत समझता है नहीं ।।
भागता विषयों में वह, खुद भी दुखी होता रहे ।
ऐसी मति मारी गई, सुख उसको मिलता है नहीं ।।
मन का उपाय क्या करूं, मैं तो थका समझाए कर ।
मन मान जा ! मन मान जा ! पर मानता तो है नहीं ।।
शिवोम् अब रक्षा करो, गुरु की शरण हूं मैं पड़ा ।
वश में करो मेरे प्रभु, मन तो सुनत कुछ है नहीं ।।

(८९)

मन -राग - वृन्दावनी सारंग ताल - केहरवा

मन नहीं मानत मोरी बात ।
भला बुरा कुछ जानत नाहीं, रहत करत उत्पात ।।
जब समझाऊं उसको कुछ भी, नहीं सुनत है मोरी ।
मैं थाकी समझाए उसको, भाग कहीं वह जात ।।
विषयों में वह बहुत रमा है, भोगों में रस उसको ।
जग में अंधा बना वह बैठा, जग में ही वह जात ।।
करो कृपा हे प्रभुजी मोरे, द्वार तुम्हारे आई ।
मन का कुछ तो करो हे स्वामी, हलचल बहुत मचात ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो मन मूरख, बहुत सताया तूने ।
हरि भजन में ही सुख व्यापे, काहे समय गवात ।।

(६०)

मन – राग- काफी ताल- दीपचन्दी

मन तो उड़ता ही रहा आकाश में, ठहर न पाया वह पल भर के लिए।
उड़ते उड़ते थक गया फिर भी रहा, चैन कर पाया न पल भर के लिए ।।
मन को उड़ने के लिए आकाश यह, सिकुड़कर छोटा बहुत ही हो गया।
खा रहा चक्कर वहीं बार बार, ढूँढने सुख को है पल भर के लिए ।।
पर मिला सुख न कहीं आकाश में, मन बना बेचैन उड़ता ही रहा।
भटकता ही रह गया वह शून्य में, पर नहीं विश्राम पल भर के लिए ॥
अब तो पंखो में है उसके दम नहीं, पर अभी हिम्मत तो उसकी कम नहीं।
दम नहीं तन में वह उड़ता ही रहा, पर नही आराम पल भर के लिए ।।
अब हुआ बेहाल उड़ता ही रहा, अब नहीं हो पाए उड़ना और है।
इन्द्रियों में शिथिलता अब आ गई, अब उड़ा जाए न पल भर के लिए ।।
अब रहा शिवओम् मन पछता रहा, क्यों रहा उड़ता यूं ही बेकार में।
पर नया रस है नहीं अन्दर रहा, दम तो ले लेने दे पल भर के लिए ॥

(९१)

मन- राग- नट - भैरव ताल - त्रिताल

जग मन भरम भुलाना।
सदा सदा ही विषयासक्ति, माया मुंह लिपटाना ।।
जग में रहे अवारा घूमत, काबू न ता कोई।
जहां चाह तहां होए चंचल, नहीं समझत समझाना ॥
कामी क्रोधी दम्मी मोही, अवगुण लेत संजोए।
छूटत नाहीं पल भर को भी, सदा रहत फंसाना ।।
साधु संग नहीं कछु कीनो, रहत कुसंगत लागा।
समझत नाहीं कोए कछु भी, भया ऐस अभिमाना ।।
राम भजन की ओर न जावे, जग को नित ही धावे।
भोगन माहीं रैन गवावे, विषयन ही सुख माना ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, जनम अकारथ कीनो।
राम बिना परमारथ नाहीं, न समझे नादाना ।।

(९२)

मन- राग - तिलक कामोद ताल - दीपचन्दी

हाय अब मैं क्या करूं, शत्रु है घर में आ गया ।
कूदता लड़ता झगड़ता है, वह अन्दर छा गया ।।
छा गया वह सारे घर में, हो गया कब्जा सभी ।
है जगह कोई न खाली, मन है उसको भा गया ।।
सेना बहुत ही है जबर, पल भर ठहर न मैं सका ।
अब तो मन में घुस गया है, राज उसका आ गया ।।
मन में जमा कर पैर वह, करने हकूमत वह लगा ।
अब नहीं जाता यहां से, चैन मन का खा गया ।।
सतिगुरु बिना कोई नहीं, जो सके उसको हटा ।
देखते ही देखते वह मन में, सब जगह छा गया ।।
शिव ओम् की विनय यही, गुरुदेव किरपा कीजिए ।
मैं बना फिरता हूं कैदी, अपना मन ही खा गया ।।

(९३)

मन- राग- अहिर भैरव ताल – धुमाली

मनवा जात जगत के माहीं ।
कितना भी समझाओ रोको, पर वह मानत नहीं ।।
न वह जाने न वह समझे, जग में दुख ही दुख है ।
पर वह सुख के कारण जग में, जात है मानत नाहीं ।।
दुखी होत पर सुख की आशा, करत है वह जग माहीं ।
दुख से कौन छुड़ाए उसको, कुछ भी सुनत है नाहीं ।।
राम भजन का मारग उसकी, समझ में आवत नाहीं ।
फिर फिर धावे विषयों ताईं, रहत दुखी जग माहीं ।।
तीर्थ शिवोम् समझ मन मूरख, राम ही एक सहारा ।
ता में थिरता, सुख ही ता में, क्यों धावे जग माहीं ।।

(९४)

मन -राग - अड़ाना ताल - दीपचन्दी

मेरे मन को क्या हुआ, जो लागता हरि चरन न ।
जगत भोगों में रहे, करता हरि का वरन न ।।
भोगने में ही रहे, चाहे दुखी कितना भी हो ।
है बना चंचल वह फिरता, है हरि का धरन न ।।
मैं रहा समझाए मन को, पर समझता वह नहीं ।
मन की ठानी है करे, सेवा हरि की करन न ।।
ठोकरें खाता फिरे है, पर न माने बात को ।
सोचता अच्छा बुरा न, पकड़े हरि के चरन न ।।
तीर्थ ऐ शिवओम् गुरुवर, मन को समझा दीजिए ।
यह चले अपनी ही चालें, पर हरि का धरन न ।।

(९५)

मन- राग -मिश्र भैरवी ताल - केहरवा

माया ममता उलझत जाए, मेरो मन बौराना ।
विषय संग ही रहत लगा है, भया मूढ़ दीवाना ॥
धावत इधर उधर जग रहता, चैन नहीं छिन पावे ।
कौतुक करत अनेक दिखावे, चाहत जग में जाना ।।
चंचलता वह त्यागत नाहीं, करत अनेक उपाए ।
वह जैसा ऐसा ही रहवत, बदलत नहीं चलाना ।।
गुरुकृपा बिन, प्रेम बिना यह, वश में आवत नाहीं ।
गुरु प्रेम ही है वह संबल, आवत एक ठिकाना ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, मन में बहुत दुखी हूं ।
करो अनुग्रह गुरुवर मो पह, छूटे मन भरमाना ।।

(९६)

मन - राग - मिश्र पीलू ताल - केहरवा

देखत सुनत विचारत समझत, भाव नहीं मन त्यागे ।
जतन करत अनगिनत मैं हारी, पर भ्रम मन नहीं भागे ।।
पूंछ रहे कूकर-वत् सीधी, करत प्रयत्न अनेकों ।
तैसे मनवा टेढ़ा चाले, अन्तर ज्ञान न जागे ।।
भगती करी, ज्ञान भी देखा, साधन योग भी कीना ।
पर कछु काम न आया कैसे, सूधी मारग लागे ।।
सुख दुख सदा भरमता रहता, आश निराश न छोड़े ।
काय कहूं यह पगला मनवा, जगत लोभ नहीं त्यागे ।।
तीर्थ शिवोम् हरि हर मोरे, पातक अति हूं भारी ।
कृपा प्रभु हो मनवा सीधा, अवगुण त्याग विरागे ।।

(९७)

मन - राग - रामकली ताल - धुमाली

कैसा मूरख मनवा तू है, उलटी चाल चले है ।
चाहे कुशल, कुसंग करे तू, विषयन माहीं जले है ।।
जगत द्वन्द्व में उलझा तू है, भोग वासना डूबा ।
आतम छोड़, बहिर को चाले, रागहिं द्वेष पले है ।।
अन्तर है आनन्द समाया, तू बाहर भागत है ।
सुख तो मिला कभी न तोहे, पापन माहीं गले है ।
राम शरण क्यों लागत नाहीं, काहे जग से आशा ।
राम ही तेरा पल पल साथी, राह क्यों नहीं लगे है ।।
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, छोड़ बखेड़ा जग का ।
जग केवल भरमाएं माया, क्यों तू जगत बले है ।।

(९८)

मन- राग - सारंग ताल - केहरवा

मूरख मनवा बात न समझे, लागत हरि भजन न ।
भोग जगत ही रहत है लागा, लागत राम जपन न ।।
वह मानत सुख विषयन माहीं, भोगन ही आनन्दा ।
भरम भुलाना, मूरख ऐसा, सुख है जगत खपन न ।।
कैसे मैं समझाऊं ताहे, क्यों कर बात वह समझे ।
कैसे कैसे छोड़े जगत विषय को, मनहिं राम लगन न ।।
रहत सदा ही गर्व भुलाना, पाप अधर्म न जाने ।
मैं समझाऊं समझत नाहीं, लागत रहा तपन न ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, मन खिलवाड़ करे है ।
भागत चंचल, बनो है ऐसा, वा कछु ज्ञान भरम न ।।

(९९)

मन- राग - श्री ताल केहरवा

निपट घमण्डी पापी मनवा, जगत विषयहिं लागा ।
रहे जगाए संतन वाको, पर वह नाहीं जागा ।।
फूला फिरे अकड़ में अपनी, सिर ऊंचा ही राखे ।
करत विवाद, रहत टकरावत, गर्व रहे मन जागा ।।
धन जोड़न में लागा निरन्तर, धर्म अधर्म न देखे ।
जैसे भी हो, जहां मिले धन, संचय करन वह लागा ।।
राम न जाने, पुण्य न माने, मारग धर्म न चाले ।
भोग विषय सुख लागा मनवा, स्वारथ मनहिं जागा ॥
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, मनवा निपट घमण्डी ।
कैसे पाऊं पार मैं इसके, मनवा जगहिं लागा ॥

(१००)

मन- राग - तिलग ताल - केहरवा

मेरो मन राम में ही सुख माने ।
बाकी विषय हैं मिथ्या जग के, दूजा सुख न जाने ।।
राम भजन में मन है लागा, जुड़ा ज्यो चांद पपीहा ।
इधर उधर अब जावत नाहीं, रहत हरि गुण गाने ।।
मिथ्या जग मिथ्या परकाशित, अभिमुख ब्रह्म सरुपा ।
मन में है आनन्द समाया, छूटे सकल बहाने ।।
शोक मोह तो विगत भए हैं, संशय सब ही भागे ।
आतम लीन भया आतम में, सुख जाने अनजाने ।।
माया तो अब छूटी जग की, न तेरा न मेरा ।
बैठ रहूं अब राम भरोसे, मन या ही सुख माने ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, किरिपा भई है तेरी ।
चेतन हुआ अलोकित जग में, खुल गए नाम खजाने ।।

(१०१)

मन- राग- केदार ताल - रूपक

क्या कंरु इस मन का प्रियतम, यह सताए जात है ।
समझता कुछ है नहीं बस, यह सताए जात है ।।
इसको समझाया है डांटा, पर यह माना है नहीं ।
अब मनाऊं इसको कैसे, यह सताए जात है ।।
पथ प्रभु पर मन लगे, क्या क्या नहीं मैंने किया ।
भागना इसने न छोड़ा, यह सताए जात है ।।
मन तो भोगों वासनाओं, में उलझ कर रह गया ।
मैं तो दलदल से निकालूं, यह सताए जात है ।।
है परेशां मन करे, पल भर का न विश्राम है ।
है भ्रमे भरमाए मुझको, यह सताए जात है ।।
हे प्रभु रक्षा करो, है यह विनय शिवओम् की ।
मन से छुटे पीछा मेरा, यह सताए जात है ।।

(१०२)

मन राग गौड़ सारंग ताल - भजनी ठेका

मन तेरा विषयन क्यों लागा रे
मन तेरा भोगन क्यों लागा रे ।।
न तू समझे भला बुरा कछु ।
जग में मनवा क्यों जागा रे ।।
जग को देखत, लोभ की दृष्टि ।
बना जगत में क्यों कागा रे ।।
मनवा तो जग रमा है ऐसा ।
भांति पिरोया ज्यों धागा रे ||
राम भजन में लग रे मनवा ।
अन्तर प्रेम न क्यों जागा रे ।।
तीर्थ शिवोम् न समझे मूरख ।
जग के पछि क्यों भागारे ॥

(१०३)

मन - राग – अभोगी ताल - रूपक

क्या कहूं मनवा मैं तोहे, मैं दुखी हाथों तेरे ।
मैं तो क्यों सारा जगत ही, है दुखी हाथों तेरे ।।
खेल तू करत तमाशे, न कोई समझे इसे ।
पर नचाता तू जगत को, है दुखी हाथों तेरे ।।
योगी बनता है तू भोगी, रुप पल पल बदलता ।
है उठाता फिर गिराता, है दुखी हाथों तेरे ।।
मित्र को शत्रु दिखाए, और शत्रु मित्र को ।
क्या करे तू कौन जाने, है दुखी हाथों तेरे ।।
दुख उठाता दुख है देता, है सुखी तू भी नहीं ।
फिर भी छोड़े न तू हठ को, है दुखी हाथों तेरे ।।
तीर्थ यह शिवोम् है अब, तंग माया से तेरी ।
छोड़ पीछा भजन में लग, है दुखी हाथों तेरे ।।

(१०४)

मन- राग - अहीरी तोड़ी ताल - धुमाली

चैन से रहने क्यों न देवे, मैं तो दुखी हूं तुमसे ।
हे मन मेरे क्यों उछलत है, बात कहूं इक तुमसे ।।
यह जग माया केवल छाया, दुख का भरा पटारा ।
इस को खोले क्यों तू मनवा, बात यही है तुमसे ॥
किसने सुख है पाया जग में, कौन नहीं दुखियारा ।
सुख की आशा करत है काहे, भूल हुई है तुमसे ।।
राम भजन ही सुख का दाता, राम ही पालन करता ।
राम भजन तू करत नहीं क्यों, बात भले की तुमसे ।।
तीर्थ शिवोम् हे भोले मनवा, दुख पाए तू काहे ।
राम भजन कर, राम भजन कर, बात एक ही तुमसे ॥

(१०५)

अशुद्ध मन - राग -मिश्र काफी ताल - दीपचन्दी

वासनाओं का है जंगल, मैं उलझता जा रहा ।
वासनाएं, वासनाएं, मैं भटकता जा रहा ।।
यह खुदी खाई है गहरी, पाओं फिसलत ही रहा ।
न संभल पाता तनिक भी, मैं फिसलत जा रहा ।।
न बचा पाए कोई भी, न कोई भी है खड़ा ।
मैं बचूं कैसे भी क्यों कर, मै लुढ़कता जा रहा ।।
मैं खड़ा आकाश सिर पर, पाओं तले पाताल है ।
बीच में हूं मैं तो ठहरा, मैं लटकता जा रहा ॥
मन मेरा काबू न मेरे, बन रहा चंचल बड़ा ।
हैं रही शंकाएं ही बैठीं, मैं हूं घटता जा रहा ।।
तीर्थ हे शिवओम् अब तो, है न मारग सूझता ।
वासनाएं कैसे छूटें, मन भटकता जा रहा ।।

(१०६)

मन- राग - दरबारी ताल - केहरवा

बूंद बूंद कर बरसे वर्षा, बूंद बूंद तालाब भरे
कण कण कर यह जगत बनाया, छिन छिन मनवा शुद्ध बने।
धीरज मन में राखो भाई, इकदम निर्मल होत नहीं।
साधन करते, गुरु कृपा से, यह मनवा है शुद्ध बने।।
जनम जनम के कर्म हैं संचित, न जाने कितने बैठे।
निर्मल बनते, होते होते, फिर यह मनवा शुद्ध बने।।
भक्ति भाव रख मन के माहीं, साधन करता नित्य रहे।
किरपा पा जावेगा जब तू, तेरा मन यह शुद्ध बने।।
राम करे मन निर्मल तेरा, तू तो यह कर सकत नहीं।
तू अर्पण हो जा राम प्रभु को, रामहिं मनवा शुद्ध बने।।
तीर्थ शिवोम हे मूरख मनवा, मन धीरज क्यों राख नहीं।
करता जा तू, चलता जा तू, ताही मनवा शुद्ध बने।।

(१०७)

अशुद्ध मन - राग - दुर्गा ताल – रूपक

वासना मरती नहीं, मैं क्या करूं, मैं क्या करूं।
वासना अन्तर समुन्दर, क्या करूं मैं क्या करूं।।
उम्र है सारी ही बीती, लड़ते इनसे है मेरी।
अब तक मरी है एक भी न क्या, करूं मै क्या करूं।।
वासनाओं का बवन्डर, जब है उठता मुझमें है।
ठहर न पाता मैं पलभर, क्या करूं मैं क्या करूं।।
अब कोई मारग न सूझे, इनका अब मैं क्या करूं।
हूं दुखी इनसे बहुत हूं, क्या करूं मैं क्या करूं।
जब जतन करता दबाने, के लिए मैं वासना।
उछल पड़ती और भी है, क्या करूं मैं क्या करूं।।
तीर्थ हे शिव ओम् मुझमें, अब नहीं आशा कोई।
है समय बाकी न कोई, क्या करूं मैं क्या करूं।।

(१०८)

सिखावन - राग - कलावती ताल - केहरवा

जग कीचड़ में पड़ा हूं, शूकर जीवन मेरा ।
पेट भरुं, धाऊं विषयन को, नाम जपूं न तेरा ।।
पावन संत करत है जग को, मुझे रहे समझावत ।
समझ न पाऊं कुछ भी मैं तो, पड़ा हूं मेरा तेरा ।।
करत याद मैं जग भोगों को, विषयों में ही रमता ।
रहत जगत भरमावत मोहे, याद नाम नहीं तेरा ॥
कैसे होगा पार उतारा, भव - सागर है गहरा ।
पार न जाऊं सागर मैं जो, नहीं अनुग्रह तेरा ।।
माया भ्रम तो अति विकट है, जग जंजाल लुभाए ।
लगा इसी में मनवा रहता, भूले नाम है तेरा ।।
तीर्थ शिवोम् हे मेरे प्रभुजी, पड़ा हूं मैं दुविधा में ।
शरणी अब तो आन पड़ा हूं, पकडूं चरण मैं तेरा ।।

(१०९)

विविध - राग - मिश्रकाफी ताल - केहरवा

चढ़ा प्रेम का रंग है गहरा, नहीं सुहाय जग का ।
मैं तो दासी भई पिया की, लेना क्या विषयन का ।।
प्रेम पिआला पी मतवारी, हरदम पिय ही देखूं ।
छूटत पी का संग न पल भर ऐसा रंग प्रभु का ।।
मुझे फसाए, मुझे डराए, यह जग रूप दिखाए ।
पर पी रंग है उतरत नाहीं, भय कछु नाहीं जग का ।।
रीझ गया पी मोरा मो पर, कण्ठ लियो लिपटाए ।
अंग अगं मोरा आनन्दित, शोक गया सब जग का ।।
अब तो केवल नाम पिया का, ही मोरे मन भाए ।
ममता जग की, आशा जग की, छूटा संग है जग का ।।
तीर्थ शिवोम् नहीं यह काचा, चढ़ा जो रंग पिया का ।
होवत गहरा पल पल छिन छिन, रंग नहीं यह जग का ।।

(११०)

सिखावन - राग -भैरवी ताल - केहरवा

अभिमान में भूला फिरे, पर कर तो कुछ सकता नहीं ।
सब कुछ प्रभु हाथ है, कुछ भी बना सकता नहीं ।।
इच्छा करे जग भोग की, मिलता जो किसमत में लिखा ।
फिर क्यों वृथा भागे फिरे, किसमत बिना मिलता नहीं ।।
जिसने बनाया जगत यह, वह ही करे प्रतिपाल है ।
चिन्ता तुझे किस बात की, चिन्ता से कुछ बनता नहीं ।।
तू है बना चंचल जगत में, भागता फिरता यूं ही ।
कुछ राम भज ले बैठकर, तू बैठता क्यों है नहीं ।।
सुख मिले भोगों में क्या, वह तो बना जंजाल है ।
सुख को दिखाय देत दुख, सच्चा तो सुख वह है नहीं ।।
अब भी समझ जा, समझ जा, जग यह माया खेल है ।
शिवओम् है समझा रहा, पर समझता तू है नहीं ।।

(१११)

सिखावन - राग- पीलू ताल - केहरवा

काबू है वाणी पर नाहीं, बोले चला ही जाता है ।
क्या कहना कब कहना किसको, यह भी समझ न पाता है ।।
अवसर क्या है, कौन है बैठा, यह भी सोचे, न देखे ।
उसको तो कहना है कुछ भी, कहता चला ही जाता है ।।
चुप रहना तो वश में नाहीं, अन्तर लक्ष्य करे नाहीं ।
बाहर को जब मनवा होवे, अन्दर न कर पाता है ।।
वाणी - वश यह जीव बना है, जीव के वश वाणी नाहीं ।
यह ही है दुर्बलता मन की, मन पीछे हो जाता है ।।
वाणी को जो वश में राखे, सब इन्द्रिन काबू होवे ।
नहीं तो जीव बेचारा हरदम, वाणी दुख ही पाता है ।।
तीर्थ शिवोम् समझ मन मूरख, शत्रु मित्र तू अपना है ।
संयम होवे, मित्र तू अपना, नाहीं दुख ही पाता है ।।

(११२)

सिखावन – राग- पहाड़ी ताल-केहरवा

भूली फिरे जगत के माहीं, नहीं आतम का ज्ञान ।
पावे दुख घनेरा जग में, पी घर से अन्जान ।।
क्यों तू सोई भोग विषय में, मिथ्या सकल पसारा ।
क्यों ढूंडे न प्रियतम को तू, बनी है क्यों बे-भान ।।
जग है धोका, रहा लुभाय, माया खेल है सब ही ।
क्यों उलझी तू इसमें मूरख, इसको साचा जान ।।
मैं समझाए रहत हूं तोये, काहे जनम गवावे ।
माया काया मन भरमाया, क्यों डूबे नादान ।।
अब भी कुछ है बिगड़ा नाहीं, प्रभु की शरण गहे तू ।
छूटे बन्धन सकल जगत के, कर अपना कल्याण ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो हे सजनी, प्रभु ही सुख का दाता ।
जो तू लेवे मारग उसका, दूर होत अज्ञान ।।

(११३)

सिखावन राग - जोगिआ ताल - धुमाली

साधन सब योगों का राजा ।
अति पवित्र है उत्तम सब से, बिना किए ही काजा ॥
साधन नहीं है मौखिक केवल, अनुभव होवत अन्तर ।
करती शक्ति साधक देखे, ता ही यह महाराजा ॥
धर्म स्वभाविक पुरुष के होते, साधक प्राप्त निरन्तर ।
क्षीण करे सब कर्मों को यह, अन्तर माहीं समाजा ॥
सरल न इससे कोई साधन, न कुछ करना धरना ।
गुरु शक्ति ही करती साधन, साधक फकत तमाशा ॥
आग ज़रे न खर्च न होवे, न कोई चोर उठावे ।
सदा निरन्तर बढ़ता रहता, यम का त्रास न फांसा ॥
तीर्थ शिवोम् मिले यह साधन, गुरु कृपा जो करते ।
साधक तो आनन्द मनावे, न पूजन नहीं बाजा ॥

(११४)

सिखावन - राग -कल्याण ताल - केहरवा

सुमिरन नहीं जो कीना तूने, फिर तूने क्या कीना रे ।
लगा रहा विषयन के माहीं, बीता जाय है जीना रे ।।
चोरी करे पहाड़ की नाई, तिल भर दान में दीना रे ।
कर्म कुकर्म करे बिन सोचे, बुद्धि साथ न दीना रे ।।
भवन बनाए बाग लगाए, कंकर माटी चूना रे ।
परमारथ का ध्यान न कीना, हाय तू क्या कीना रे ।।
अन्त समय जब सिर पर आवे, सिमरन में मन दीना रे ।
तो फिर सिमरन होवे नाहीं, मन चंचलता लीना रे ।।
उलटी रीत जगत की देखी, पापी सुख से जीना रे ।
जो राखे है नाम प्रभु को, ताही को यश दीना रे ।।
तीर्थ शिवोम् समझ मन मूरख, माया घर क्यों कीना रे ।
जग में थिरता है को नाहीं, भोगों में रस लीना रे ।।

(११५)

सिखावन - राग - नन्द ताल - केहरवा

लागत लागत है रंग लागत ।
धीरे धीरे मेरे भाई, प्रभु प्रेम मन में है पागत ।।
खोया मन है जग भोगों में, बना दिवाना, विषयों का वह ।
धीरे धीरे करवट लेता, सोया मनवा फिर है जागत ।।
धीरज राखो मन अपने में, प्रभु प्रेम का लम्बा मारग ।
कठिन चढ़ाई ऊंचा घर है, जाना नहीं कहीं तुम थाकत ।।
प्रभु है दीन दयाल अनन्ता, पारावार नहीं है कुछ भी ।
ता का प्रेम अनोखा देखा, भक्तन की पत वह है राखत ।।
मन को राखो वश अपने में, चंचल न बन जाए जग में ।
हरदम आस प्रभु की मन में, प्रभु तुम्हारा रस्ता ताकत ।।
तीर्थ शिवोम् कृपा हो मो पर, लगा रहे मन तुमरे ताईं ।
ध्यान तुम्हारा रहे हृदय में, और नहीं मैं तुमसे मांगत ।।

(११६)

सिखावन - राग - कलावती ताल - केहरवा

मेरा मन विमान की भाँति, चंचल गगन आकाशों में ।
सुन्दर स्वप्न सुहाने देखे, गहरे मन आकाशों में ।।
उतरन नीचे नाहीं चाहे, मस्त उसी हालत में है ।
खिंचता रहता, पिसता रहता, विषयों के आकाशों में ।।
भटके फिरता लोक - कल्पना, जगत बनाए अपना है ।
दुखी बहुत ही आप भी होता, करता मुझे आकाशों में ।।
कैसे मैं समझाऊं मनवा, इधर उधर तू क्यों भटके ।
थिर हो बैठ रहे अन्तर में, कुछ है नहीं आकाशों में ।।
अन्तर सुख आनन्द भरा है, बाहर भटकन दुखदाई ।
अन्तर आतम राम विराजे, दुख ही दुख आकाशों में ।।
तीर्थ शिवोम् समझ मन मूरख, समय गंवावे क्यों अपना ।
जीवन तेरा बीता जाये, विरथा गमन आकाशों में ।।

(११७)

सिखावन - राग - भीमपलास ताल - केहरवा

सजनी पिया मिलन का तेरे, चाव भरा मन माहीं ।
फिर क्यों चादर ओढ़ के सोई, करत भजन क्यों नाहीं ।।
पी तो बैठा राह निहारे, करे प्रतीक्षा तेरी ।
फिर क्यों बनी उदास पिया से, जावत क्यों तू नाहीं ।।
तुझ बिन सूजी सेज पिया की, जाए तू श्रंगारे ।
बन्द किवाड़ किए, पड़ सोई, क्या सोचे मन माहीं ।।
सजनी पिया उदास तेरे बिन, तू उदास बिन पी के ।
फिर क्यों मिलन होत है नाहीं, बाधक कोई नाहीं ।
रही उठाए तोहे सखियां, हार श्रंगार तू कर ले।
गले लगाए तोहे सजना, जहां है दूसर नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् सुहाग है तेरा, जागा तुझे बुलाए ।
हाथ फैलाए, आगे बढ़कर, आदर करत क्यों नाहीं ।।

(११८)

सिखावन- राग - देवगिरी बिलावल ताल – केहरवा

प्रेम प्रकट जा हिरदय नाहीं ।
ता हिरदय है शिला समाना, वा में है सुख नाहीं ।।
जा हिरदय में प्रेम बसत है, वहीं आनन्द बिराजे ।
राग - द्वेष न समता ता में, आशा तृष्णा नाहीं ।।
प्रेम की महिमा प्रेमी जाने, जग तो है अनजाना ।
प्रेमी मस्त सदा मन अन्दर, वह विषयन में नाहीं ।।
प्रेमी भक्त पियारे प्रभु को, ता पर करत कृपा वह ।
अंग संग हर दम वह रहता, छोड़त पल भर नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् प्रेम रंग राता, हिरदय प्रेम रंगीला ।
प्रेम बिना सूझे न कुछ भी, प्रेम बिना धन नाहीं ।।

(११९)

सिखावन - राग - विलासखानी ताल - धुमाली

मनवा धीर धरत क्यों नाहीं ।
चंचल होकर जग में भटके, देखत अन्तर नाहीं ।।
धीर होय, चंचलता जावे, हरि चरणन मन लागे ।
दीखत भोग लुभाने अति ही, पर थिरता है नाहीं ।।
धीरज धरे, तो ही सुख पावे, आशा तृष्णा त्यागे ।
माया डाकिन छोड़ के मनवा, भजन करत क्यों नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् रहा समझाए, अब भी समझ पियारे ।
हरि भजन बिन है सुख नाहीं छोड़त भ्रम क्यों नाहीं ॥

(१२०)

सिखावन - राग - धानी ताल - केहरवा

निन्दक भला करे भगवान, तुम्हारा भला करे भगवान ।
तुम मेरे हितकारी सच्चे, भला करे भगवान ।।
तुम करते रखवाली मेरी, कहीं भटक न जाऊं ।
पैनी दृष्टि बनी तुम्हारी, भला करे भगवान ।।
अन्तर मैल भरी जो मेरे, साफ उसे हो करते ।
मेरा मैल हो लेते आपुन, भला करे भगवान ।।
तुम सम नहीं कोई उपकारी, हर दम सेवा करते ।
नाहीं थकते, नाहीं अघाते, भला करे भगवान ।।
मैं तेरा उपकार हूं मानत, करत प्रणाम तुम्हें हूं ।
रक्षा मेरी करते रहना, भला करे भगवान ।।
तीर्थ शिवोम् हे प्यारे निंदक, तुम सम दूजा नाहीं ।
अपना अहित, करत हित जग का, भला करे भगवान ।।

(१२१)

सिखावन - राग - भीमपलास ताल - केहरवा

माला फेरत तू थक हारा, पर मन वश है नाहीं ।
साधन का तो दम्म करे तू, मन तो लागत नाहीं ।।
वह तो बना है ऐसा चंचल, पल भर थिर न रहता ।
तू तो साधक बना है कैसा, मन तो सुनत है नाहीं ।।
माया माया करते करते, बीत गई वय सारी ही ।
माया हाथ न राम ही आया, सुख तो आवत नाहीं ।।
जब तक मनवा बना है चंचल, तब तक भजन न होवे ।
जब मनवा है थिरता पावे, फिर भटकत है नाहीं ।
गुरु कृपा बिन राम न रीझे, न ही मन थिर होवे ।
वर्षा जब किरपा की होवे, फिर तो भागत नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् दया गुरुदेवा, मैं तो शरण पड़ा हूं ।
पार लगाओ नैया मोरी, कुछ भी ताकत नाहीं ।।

(१२२)

सिखावन - राग मिश्र शिवरंजनी ताल - केहरवा

यह क्या गजब किया मैंने, जो प्रियतम छोड़ चली आई ।
माया भ्रमित हुई ऐसी, कि जग में लीन हुई जाई ।।
जगत सुहाने सुन्दर मैंने, देखे भान्ति भान्ति ।
हुई आकर्षित इन के माही, जगत का रूप हुई जाई ।।
सुन्दर सपने झूठे हुई गए, सुख न मिला कहीं भी ।
पर मैं जग में ऐसी उलझी, मुक्त न हो पाई ।।
फिर फिर सुन्दर सपने देखे, जग में सुख को चाहा ।
भागा सुख आगे ही आगे, दुखिया बन पाई ।।
मेरी भूल क्षमा हे प्रभुजी, जग को छोड़न चाहूँ ।
पर मैं छोड़ न इसको, सब ही निष्फल जाई ॥
तीर्थ शिवोम् पड़ी हूं द्वारे, शरण में मोहे लीजो ।
जग छूटे, हो दर्शन तेरा, आशा लेकर आई ।।

(१२३)

सिखावन - राग चारुकेशी ताल - धुमाली

जग में भीड़ भरी है भारी, पर मैं रहा अकेला ।
कोई अपना नहीं है दीखत, भीड़ में फिरत अकेला ।।
मानव से मानव टकराए, शोर मचा है भारी ।
न कोई को कोई सुनता, ऐसा लगा है मेला ।।
खींच रहे सब इक दूजे को, पटखी देत न चूकें ।
मैं देखत हूं सभी तमाशा, खड़ा हूं एक अकेला ।।
जाऊं किधर, किसे जा पूछूं, न कोई सुनने हारा ।
जग तो आपाधापी लागा, मचा है ठेलम ठेला ।।
अपना आप सम्भाले मानव, उसको उचित यही है ।
करनी का यह खेल है सारा, पड़ा जो बीच झमेला ॥
निकल भाग शिव ओम् यहां से, सब स्वारथ में लागे ।
तू क्यों चिंता करे किसी की, आया जीव अकेला ।।

(१२४)

सिखावन - राग- जोगिआ ताल - धुमाली

संत सुनो यह कथनी मेरी, जगत असार बना है ।
केवल दीखे, मन भरमावे, दुख आगार बना है ।।
जीव रहा उलझा ही इसमें, निकल नहीं वह पावे ।
लेत फसाय जीव को बांधे, दुखद अपार बना है ।।
सोच करो तुम निकल ताईं, बंधन अजब अनोखा ।
कसता जाए, बढ़ता जाए, ताड़नहार बना है ।।
राम शरण ही एक उपाय, भव को काटे जारे ।
शरण गहो तुम राम प्रभु की, तारनहार बना है ।।
सीताराम दया के सागर, नदिया पार करावें ।
द्वारे जाए, रिक्त न आए, काटनहार बना है ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, जग मो नहीं सुहावे ।
नाम दान प्रभु मोहे दीजो, अपरम्पार बना है ।।

(१२५)

सीख -राग - आसावरी ताल - रूपक

अब भी कुछ बिगड़ा न तेरा, होश कर तू होश कर ।
याद में लग जा प्रभु के, होश कर तू होश कर ।।
क्या लगा जग में ही रहता, सिमरता पल भर नहीं ।
अब तो वेला जा रही है, होश कर तू होश कर ।।
न कोई तेरा यहां है, मतलबी सब यार हैं ।
तू लगा उनके है पीछे, होश कर तू होश कर ।।
क्या समझ तुझमें नहीं कुछ, जो समझ पाए ज़रा ।
यह जगत मिथ्या बना है, होश कर तू होश कर ।।
क्या किया है जनम पाए, क्या कमाया आ यहां ।
लेखा जोखा कुछ भी नाहीं, होश कर तू होश कर ।।
है चुका समझा तुझे है, थक गया शिवओम् भी।
वह तो अब जाए यहां से, होश कर तू होश कर ।।

(१२६)

सीख- राग - भूप ताल - दादरा

उम्र दी मैंने गंवा, इस जग के पीछे भागते ।
अब रहा पछताए हूं मैं, क्यों रहा मैं भागते ।।
दिन में न आराम पाया, रात भी जागा किया ।
था लगा जग में ही दिन भर, मैं रहा बस भागते ।।
था डराता दनदनाता, दब रहे मुझसे सभी ।
थी तसल्ली दिल में मेरे, सब है मुझसे कांपते ।।
पर न पाया चैन दिल का, भागता ही भागता ।
काल ने है खटखटाया, दिल में सोचा हांफते ।।
अब नहीं होने का कुछ भी, अब तो वेला चुक गई ।
जब समय था हाथ तेरे, न किया कुछ जागते ।।
तीर्थ हे शिवओम् अब भी, होश कर तू होश कर ।
नाम सिमरन कर प्रभु का, जो हैं सबको राखते ।।

(१२७)

सीख – राग- यमन कल्याण ताल- दादरा

पापी नीच कुकर्मी मूरख, मुझसा बुरा न कोई ।
पाप करूं पर उसे छुपाऊं, मुक्ति कैसे होई ।।
मेरी तो यह आदत पक्की, दोष ही जग में देखूं ।
पर मैं ही हूं बुरा सभी से, बुरा न दूजा कोई ।।
सब जीवों में बह्म विराजे, वह स्वरुप है सबका ।
उसमें दोष नहीं कुछ भी, है जीव बेचारा कोई ।।
अपने दोष जो देखन लागूं, चादर सबसे मैली ।
धोऊं रगडूं साबुन लाऊं, पर है मैल न जाई ।।
शरण राम ही मारग है जो, चादर उजली कीनी ।
पर तो जीव शरण न लेवे, कितनी मैली होई ।।
तीर्थ शिवोम् विनय है प्रभुजी, भगती सेवा दीजो ।
मैल कटे, मन निर्मल होवे, गुण न मुझमें कोई ॥

(१२८)

राग - भीम पलासी- ताल दीपचंदी

जल निरन्तर बह रहा नदिया में है,
वक्त का घण्टा तो बजता ही रहा ।
उम्र तो हरपल है बीती जा रही,
काफिला चलता, सो चलता ही रहा ।।

जो हैं पीछे रह गये सो रह गये,
साथ दे पाए नहीं जो वक्त का ।
वक्त की रफ्तार आगे बढ़ गई,
रह गया सो हाथ मलता ही रहा ।।

वक्त आगे बढ़ गया लौटे नहीं,
वक्त मुड़कर भी न पीछे देखता ।
जिसको जाना साथ आए वक्त के,
वक्त तो आगे ही बढ़ता ही रहा ।।

घूमता रहता है चक्र यह वक्त का,
न निकल पाए कोई भी चक्र से ।
घूमता और वह घुमाता ही रहा,
जगत सारा चक्र इसमें ही रहा ।।

अब जो चाहे निकलना तू चक्र से,
अप्रभावित हो के तब कर्म कर ।
रह लगा हरदम प्रभु की याद में,
टूट जाए चक्र, चलता ही रहा ।।

निकल बाहर आएगा शिव ओम् तू,
छूट जाए मुश्किलें सब वक्त की ।
तू बसे आनन्द अपने घर रहा,
चक्र जो है घूमता चलता रहा ।।

(१२९)

सीख - राग मिश्र भैरवी

आंगन साफ करूं मैं कैसे, कचरा बहुत जमा है ।
जतन करूं तो और भी गंदा, ऐसा हाल बना है ।।
कर्म अनेकों संचित मन में, अच्छे बुरे सभी ही ।
चंचल मनवा ठहर न पाए, उछलत बहु घना है ।।
चेतनताई नहीं तनिक भी, पर अभिमान में डूबा ।
जो है चेतन गर्व करे न, थोथा बजत चना है ।।
जीव लपेटे कर्मन कपड़े, नहीं उतार सके वह ।
ऐसी दुर्गति भई जीव की, पापों माही सना है ।।
तीर्थ शिवोम् राम रंग रंगया, मौज शौक सब छूटे ।
अब तो मन में प्रेम समाया, छूटे संत जना है ।।

(१३०)

सीख - राग - किरवानी ताल - केहरवा

जो आए सो इक दिन जाए, मौत किसे न छोड़े ।
आवागमन रहा पछताए, फिर फिर माथा फोड़े ।।
प्रभु मौज बिन मुक्ति नाहीं, जतन करे कितना भी ।
ताकी कृपा ही पार करावे, आवागमन को छोड़े ।।
जीव पड़ा माया के माहीं, गर्व करे बहु भारी ।
ताही जकड़ा जात जगत में, आवन जान न छोड़े ।।
जब तक माया के अन्दर, तब लौं भ्रम न जाई ।
तब लगि जीव पड़ा दुख भोगे, बंधन कबहूं न तोड़े ।।
तीर्थ शिवोम् है अर्ज़ गुज़ारे, कृपा करो भगवन्ता ।
तुमरी कृपा ही मोर सहारा, अर्न्तमुखता चेतन को मोड़े ।।

(१३१)

सीख - राग - गुजरी तोड़ी ताल - धुमाली

जो चाहे कल्याण तू मनवा, मन हरि अर्पण कीजे ।
आठ पहर और श्वास श्वास तुम, नाम प्रभु का लीजे ।।
जो सुमरे तू नाम प्रभु का, चाहे धाम हरि का ।
पल पल छिन छिन ऊठत बैठत, विसर हरि न दीजे ।।
सदगुरुदेवा मेल मिलाए, परगट करे हरि को ।
सहज समाधि गुरु कृपा से, अर्पण चरनन कीजे ।।
जो पा जाए चरण हरि के, लोभ मोह सब भागे ।
अन्तर मन आनन्द मनाए, छोड़ बखेड़े दीजे ॥
तीर्थ शिवोम् सदा सुख माने, हरि हिरदय में धारे ।
राम चरण में ध्यान लगावे, माया दूर करीजे ।।

(१३२)

सीख - राग - विलावल ताल - भजनी ठेका

राम नाम रस लेय तू रसना, राम नाम रस लेय ।
राम नाम सब कारज साधे, राम नाम मन देय ।।
राम रसायन पान करे न, जग विषयन में लागी ।
जगत विषय में थिरता नाहीं, राम नाम मन देय ।।
कृपा करो हे रसना मोरी, छोड़ विषय का चसका ।
यह विषयन तो सुख के दाता, राम नाम मन देय ।।
जो चाहे भीतर और बाहर, दूर सकल अंध्यारा ।
राम नाम रसना कर धारण, राम नाम मन देय ।।
तीर्थ शिवोम् सकल ही साधन रामहि नाम समाए ।
राम नाम ही पार उतारे, राम नाम मन देय ।।

(१३३)

सीख - राग - सिन्ध भैरवी ताल - धुमाली

मन्द बुद्धि है जीव अभागा, जो प्रभु शरण गहे न ।
रोवत फिरता, सुख दुख पाता, सीता राम कहे न ।।
मानुष जनम ही साधन सम्भव, पर वह राम जपे न ।
समय बिगारत रहे आपना, चरणी राम लहे न ।।
मनवा तो तो काबू में नाहीं, चंचल बना भटकता ।
एक ठौर न मांगे प्रभु से, मुक्ति लाभ चहें न ।
घुटन रहता, कुढ़ता रहता, भागत जग के पाछे ।
मन में राखे द्वेष दबाकर, मुख सों कछु कहे न ।।
ऐसा जीवन है धिकारा, लाभ नहीं कछु उसका ।
तीर्थ शिवोम् दया प्रभु कीजो, हूं मैं दास तुम्हारा ।
खोजत खोजत तुमको पाया, तृष्णा जगत सहे न ।।

(१३४)

सीख - राग - विहाग ताल - केहरवा

मैं पापी बड़ा चालाक, नहीं पर कोई जाने ।
मैं छुप छुप करता पाप, नहीं कोई पहचाने ॥
रात अंधेरी बड़ी भयानक, मोहे अच्छी लागे ।
पाप करने का अवसर देती, जिससे कोई न जाने ।।
नीच घमण्डी मूरख मनवा, पाप ही कर्म कमाए ।
करे बुराई अच्छा बनता, दुनियां बात यह माने ।।
आंख बचाकर है रहता, पर वह बच न पाय ।
अन्तर मन में ईश्वर बैठा, घड़ी घड़ी की वह जाने ।।
मैं समझाऊं तोहे, विषयन दुख पटारा ।
जो खोले वह दुखी ही होत, पर यह बात न माने ।।
तीर्थ शिवोम् समझ रे मनवा, चार दिनन का मेला ।
काहे दुख को आप बुलाए, राम जपन की ठाने ।।

(१३५)

सीख - राग - कलावती ताल - केहरवा

प्रेम गांठ मजबूत नहीं थी, उतर गई छिन माहीं ।
जो जानत कमजोर मैं इसको, ढीली राखत नाहीं ॥
प्रेम लगाया जग के अन्दर, फिर फिर धोका खाया ।
एक प्रभु ही साचा संगी, छोड़त है जो नाहीं ।।
मैं पगली कुछ समझ न पाई, प्रीतम अन्तर माहीं ।
खोजत झांकत इधर उधर में, पीव तो दीखत नाहीं ।।
जो मेरा वैराग हो पक्का, प्रीतम बिछुरत नाहीं ।
प्रेम अनोखा हिरदय माहीं, गांठ खुलत है नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे भगवन्ता, शरण तिहारी आई ।
दीजो प्रेम हृदय के अन्दर, प्रेम तो छूटत नाहीं ।।

(१३६)

सीख- राग मिश्र रागेश्री -ताल - केहरवा

निन्दा निन्दा करे भी कितनी, भक्त क्रोध मन माही ।
उलटे वह उपकार ही माने, प्रेम हृदय के माहीं ।।
पाप लेत है दीन जनन का, जो निन्दा रस राखे ।
निर्मल करता मन भक्तन का, लेत है कुछ भी नाहीं ।।
निन्दा अस्तुति सम कर माने, सही समाधि होई ।
मार्ग राम का होत प्रकाशित, राग द्वेष को नाहीं ॥
निन्दक प्रेम जो जन है, राम से प्रेम वह करता ।
करे प्रशंसा, प्रेम हो उससे, सो तो प्रेम है नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् तुम्हारी निन्दक, सदा सदा ही जय है ।
है भक्तन के हित साधक तुम हो, फसत स्वयं जग माहीं ।।

(१३७)

उद्बोधन - राग- अहिर भैरव ताल - केहरवा

सन्तो सहज समाधि लगाओ।
सहज लगाओ सहज उतारो, सहजे पार लंघाओ ।।
सहजे मनवा, सहजे काया, सहजे कर्म सभी हों।
सहजे दीखे जगत यह मिथ्या, तृष्णा मार भगाओ ।।
पुरुषारथ का काम न कोई, सहजे सेवा पूजा।
सहजे राम प्रकट हो अन्तर, सहजे दर्शन पाओ ।।
अपरम्पार प्रभु बेअन्ता, माया जगत निआरा।
अंतर माही ताही विराजे, सहजे ही गुण गाओ ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, सहज ही साधन दीना।
सहज रहूं मैं सहज विचारुं, सहजे कर्म कराओ ।।

(१३८)

उद्बोधन – राग-सारंग ताल - केहरवा

छोड़त नाहीं काहे जग को, क्यों इसमें तू लागे।
राम भजन एको सुख सागर, काहे सुख सों भागे ।।
जन जो भूला राम सहारा, अगन वासना वासा।
हिरदय जलता, मनवा जलता, पल पल अगनी लागे ।।
फिर तू लागा इसमें काहे, काहे मन भरमावे।
काहे सुख की आशा राखे, त्याग इसे न भागे ।।
संत वेद चेतावें तोहे, पर तू चेतत नाहीं।
जागत क्यों न, समझत क्यों न, राम भजन न लागे ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो हे भाई, भजन राम सुख व्यापे।
राम भरोसे, राम सहारे, राम लगे सुख जागे ।।

(१३९)

उद्बोधन - राग- बैरागी भैरव ताल - रूपक

हे प्रभु खोजन तेरा दर, भाग कर जाऊं कहां।
दर तेरा अपना ही मनवा, दूजा दर पाऊं कहां।।
जो नहीं है खटखटाए, पा नहीं सकता तुझे।
मैं भी आया दर पह तेरे, हट के मैं जाऊं कहां।।
मन तो चंचल वासनामय, बन्द रहता दर सदा।
न कभी यह दर खुले है, खटखटाऊं मैं कहां।।
हे प्रभु किरपा हो तेरी, बन्द दरवाजा खुले।
मांगने किरपा कहां पर, मन को भटकाऊं कहां।।
तीर्थ ऐ शिवओम् प्रभु ही, एक राखन- हार है।
दर प्रभु का छोड़ करके, आसरा पाऊं कहां।।

(१४०)

उद्बोधन – राग- रामकली ताल - केहरवा

जैसे वायु झाड़ हिलाए, ऐसे मनवा चंचल मेरा।
विषय पवन में झोंके खाय, नाम जंपू पर न मैं तेरा।।
तनिक विषय की आहट पाऊं, धावत जाऊं मन पतियाऊं।
भोगों माहीं उलझ रहा मैं, जगत वासना मुझको घेरा।।
मनवा लगा जगत में ऐसा, जग के भोग समेंटू सब मैं।
फिर भी वह भरता ही नाहीं, लगा रहे नित मेरा मेरा।।
मिला नहीं फिर भी सुख मोहे, जग में तो सुख है ही नाहीं।
फिर पाता सुख को मैं कैसे, सुख का सागर नाम है तेरा।।
जो हरि नाम जपे जन केरा, पाए अन्तर धन का ढेरा।
सदा सुखी, आनन्द मनाए, पा जाए वह घर है तेरा।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, मैं पापी, जग दुख का मारा।
कैसे हो मेरा उद्धारा, कैसे पाऊं मारग तेरा।।

(१४१)

उद्बोधन – राग- देस जै जैवन्ती ताल - धुमाली

सत्य स्वरुपा हरि भजन है, जगत सभी है सपना ।
मेरा मेरा करता हारा, मिला न कोई अपना ।।
जग मिथ्या है तुझे बुलावे, देखन लागे मीठा ।
सार न कोई पाया इसमें, विरथा इसमें खपना ॥
हरि सत्य है हरि नित्य है, भजन भी मिथ्या नाहीं ।
दूर भजन से सारी दुविधा, नाम हरि का जपना ।।
तीर्थ शिवोम् राम गुण गाओ, भजन ही पार करावे ।
भजन बिना जीवन है विरथा, विरथा इसमें तपना ।।

(१४२)

उद्बोधन - राग -मिश्र काफी ताल - दादरा

मुझको यह हो क्या गया, दुनियां में अब बेकाम हूं ।
सब तरफ नाकाम हूं, नाकाम ही नाकाम हूं ।
लोग कहते मुझको पागल, हरकतें ऐसी करूं ।
क्या करुं काबू नहीं दिल, सब तरफ नाकाम हूं ॥
झांक कर अन्दर जो देखा, थी खुदी दिल में नहीं ।
यार ही बैठा वहां पर, इसलिए नाकाम हूं ।।
यार अन्दर, यार बाहर, वह ही हर सू दीखता ।
फिर करूं तो क्या करूं, समझ न कुछ नाकाम हूं ।।
तीर्थ ऐ शिवओम् दिलबर, यह मुझे क्या कर दिया ।
वह ही दीखे, हर जगह है, मैं बना नाकाम हूं ।

(१४३)

उद्बोधन - राग- गुणकली ताल - केहरवा

झाड़ विषैले, बना सघन वन, यह संसार असारा ।
धावत जीव, समझ मीठे फल, पावत दुख अपारा ।।
जलत पंतगे देखि के दीपक, देवत प्राण गवाए ।
तैसे जीव जगत के ताईं, उलझ रहा मतिमारा ।।
काम, क्रोध, मद तीन रिपु हैं, जीव को मारें जारें ।
गर्व होत जब संग है इनके, लिया जकड़ संसारा ।।
माया जाल जीव जो फांसा, छूट सकत है नाहीं ।
भव जल नदिया तैर सकत न, उतरन नाहीं पारा ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, भव यह कैसे छूटे ।
तुमरी कृपा बिना न कोई, जग में मोर सहारा ।।

(१४४)

उद्बोधन – राग- दरबारी ताल - त्रिताल

प्रभु विछोह दुख देत है भारी ।
कांटा खटके, हिरदय माहीं, रहत अति दुखियारी ।।
प्रभु विछोह मन जात जगत को, भोगन को ललचाए ।
मन तो रोके रुकत है नाहीं, विपद पड़ी अति भारी ।।
जाना चाहूं तुमरे द्वारे, मनवा जग को धाए ।
कैसी अजब यह लीला तेरी, मन विषाद अति भारी ।।
तुमरा नाम करुं मन धारण, भोग न निकसे मन सों ।
नाम भोग में होड़ लगी है, पेखत पेखत हारी ।।
इक मन जाए तुमरे पासे, दूजा जगत के माहीं ।
मेरा बस न चाले मन पर, जतन करत मैं हारी ।।
तीर्थ शिवोम् कृपा भगवन्ता, आओ दर्शन दीजो ।
मन विकार सब बाहर भागें, होऊं अति सुखारी ।।

(१४५)

उद्बोधन - राग - मिश्र धानी

जब जगत को देखता हूं, भाग जाता मन वहीं ।
मन निकल जाता है बाहर, रह ही जाता तन यहीं ।।
यह जगत की सूरतें जो, हैं लुभाती लग रही ।
खेंचती हैं ओर अपने, फिसल जाता जन वहीं ।।
खाने को जो रस रसीला, मुख मजा देवे बड़ा ।
बस रहूं इस घर पड़ा मैं, सोचता है मन यही ।।
जगत का भी दोष क्या है, मन है चंचल आपना ।
घूमता हर ओर है वह, तन कहीं और मन कहीं ।।
हे प्रभु यह मन ही मेरा, दूर तुमसे जो किया ।
याद तेरी था मैं रहता, रहता फिर मन भी वहीं ।।
तीर्थ हे शिवोम् मन में, है बखेड़ा कर दिया ।
मैं रहा घर घाट का न, जग में डूबा मन यहीं ।।

(१४६)

उद्बोधन - राग भैरवी ताल - केहरवा

उड़ चला आकाश पंछी, मन तो अच्छों में रहा ।
घूमता गगन में, सोचता घर की रहा ।।
जो लगे मनवा प्रभु में, घूमता जग में रहूं ।
शोक फिर बात का है, मन प्रभु में ही रहा ।।
मन का सारा खेल है, हाजिर जहां मन भागता ।
घूमता फिरता कहीं भी, है वहीं मन है रहा ।।
मन में सिमरन राम का हो, हाथ चाहे काम में ।
साधना में लगा वह, मन तो साधन कर रहा ।।
हे प्रभु तुझको जपूं, चाहे भटकता जग रहूं ।
ध्यान तेरा हो हृदय में, मन वहीं पर है रहा ।।
तीर्थ हे शिवोम् तू, मन को प्रभु में ही लगा ।
उसकी सेवा, उसका सिमरन, साधना करता रहा ।।

(१४७)

सीख -राग- आसा ताल- भजनी ठेका

चलो भैया राम के घर को चलो ।
राम का घर है सुख का दाता, राम के घर को चलो ।।
राम के घर में बगिया सुन्दर, नाचत मौर आनन्दित ।
सभी ओर सौंदर्य है फैला, राम के घर को चलो ।।
वाद विवाद न कोई उपजे, शोक मोह नहीं कोया ।
सभी प्रेम रस रहत हैं डूबे, राम के घर को चलो ।।
जगत दृश्य भी दीखत नाहीं, सकल विलीन हुआ है।
आतम राम रहे परकाशित, राम के घर को चलो ।।
क्या लेना है इस झगड़े में, हरदम खड़ा तमाशा ।
नहीं समस्या, न ही अड़चन, राम के घर को चलो ।।
तीर्थ शिवोम् राम घर जाऊं, राम का धाम अलौकिक ।
सदा समाधी राम है बैठा, राम के घर को चलो ।।

(१४८)

सीख -राग -मिश्र काफी ताल- केहरवा

मारग दुर्गम देख के साधक, कहीं शिथिल न हो जाना ।
पथ कंटीला पथरीला, कहीं फिसल तुम न जाना ।।
जो प्रेमी संसारी सुख के, मारग से वह डरते हैं।
तुम तो प्रेमी राम प्रभु के, विचलित कहीं न हो जाना ।।
धीरज राखो मन में अपने, मारग कठिन तो है ही ।
गिरते पड़ते उठते बढ़ते, प्रियतम नहीं भुला जाना ।।
इक दिन राम मिलेगा तोहे, इक दिन भाग उदय होगा ।
सूरज चमके इक दिन तेरा, मारग नहीं बदल जाना ।।
तू ती पीवे राम रसायण, शक्ति राम प्रदाता है।
वह ही है मारग दिखलाए, उंगली छोड़ नहीं जाना ।।
तीर्थ शिवोम् हे गिरधर नागर, मैं तो शरण तिहारी हूं।
शक्ति भक्ति धीरज बखशो, भूल मुझे तुम न जाना ।।

(१४९)
मन - राग - कौशिया ताल - दीपचन्दी

दुख पावत पर मन नहीं मानत, धावत जगत विषय को ।
करत जतन पर तजत नहीं हठ, पुनि पुनि रत भोगन को ।।
मोहे कहत तू राम भजन कर, आप विषय उठ धाए ।
राम भजन बिन मन हो कैसे, समझ न आवे मो को ।।
उलझन बीच पड़ा हूं मैं तो, काय करूं या मन का ।
कहता कुछ, करता वह कुछ है, मूरख कहे वह मो को ।।
मुक्त जीव होएगा कैसे, बना है चंचल मनवा ।
यह जीवन तो दारुन दुःख है, निपट कैस, उलझन को ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, भर पाया जीवन से ।
मन का कुछ उपचार करो प्रभु, जावत यह दुख ही को ।।

(१५०)

उद्‌द्बोधन - राग - जीवनपुरी ताल - कैहरवा

पापी मो सम जग में नाहीं ।
मति मलीन अति दीन हीन हूं, कृपण कोउ है नाहीं ।।
जब हूं देखत विषय जगत के, लपकत मन है मोरा ।
रहत सदा स्वारथ में लागा, प्रेम हरि संग नाहीं ।।
आशा तृष्णा रहत ही डूबा, श्रेय न जानत कुछ भी ।
मैं हूं और जगत यह माया, प्रभु भरोसा नाहीं ।।
कैसे होगा पार उतारा, बंधन छूटे कैसे ।
हरिहिं कृपा करे कछु होवे, कुछ भी जानत नाहीं ।।
तीर्थ शिवोम् कृपालु प्रभुजी एक सहारा ।
काटो बंधन, तड़पत हिरदय, विनय प्रभु के पाहीं ।।

(१५१)

विविध - राग -भैरवी ताल - केहरवा

सिमरन नाम सदा सुखदाई, भवसागर जो पार करावे ।

टूटे बंधन सब ही माया, हरि ही बेड़ा पार लंघावे ।।

छोटा बड़ा कोई हो मानुष, नाम हरि से नेह लगावे ।

वेग करें आवन का प्रभुजी, बंधन सब ही काट गिरावे ।।

नाम जहाज़ पह नौका बांधी, जिस भी जन ने प्रेम सहित है ।

वह जन शोक रहित है होता, नैया वा की पार करावे ।।

तीर्थ शिवोम् सिमरले मवना, राम सहाई तेरा होवे ।

शोक रहित फिर मोह रहित तू, बैठा वंशी चैन बजावे ।।

(१५२)

विविध -राग - तिलक कामोद ताल - केहरवा

अमर प्रभु है अमर नाम है, जग है मरने हारा ।

नाम जपे जो नित्य प्रभु का, कौन है मारनहारा ।।

नश्वर नाम रूप यह मिथ्या, पर न नाम प्रभु का ।

छिन छिन पल पल सिमरन करले, दुख है मेटनहारा ।।

संत कृपा से जीवन सुधरे, नाम रूप धन पावे ।

संत शरण में राखो हिरदय, पार उतारनहारा ।।

तीर्थ शिवोम् नाम धन पाया, सदा आनन्दित रहता ।

आशा तृष्णा मन में नाहीं, प्रभु है तारनहारा ।।

(१५३)

आनन्द - राग - विहागड़ा ताल - केहरवा

मैं पी संग रास रचाऊंगी ।
पीय मेरा है दिव्य अलौकिक, ताही में रम जाऊंगी ।।
पी मेरा सुख रूप है ऐसा, जा में दुख है नाहीं ।
गहर गम्भीरा अलख अनन्ता, ता ही के गुण गाऊंगी ।।
प्रियतम मेरा सुख बरसाए, सुख ही सुख कर देता ।
मैं भी भीग सुखी हुई जाऊं, सुख में डूबी जाऊंगी ।।
प्रेम का रंग पिया छिटकाए, प्रेम रंगा सब होय ।
प्रेम के रंग में मैं भी रंग कर, पिय प्रेमी बन जाऊंगी ॥
सुख है पिय की सेज अनन्त, जग बिसरत है जाता ।
पी को गले लगा कर मैं तो, पी में ही मिल जाऊंगी ।।
तीर्थ शिवोम् पिया सुख ऐसा, जैसा जग में नाहीं ।
नाचत नाचत पी संग मैं तो, न ही भिन्न रहाऊंगी ॥

(१५४)

आनन्द - राग -मिश्र पीलू ताल - धुमाली

मोहे लागा प्रेम का बाण सखी ।
चित्त रंगा अनुराग में अब है, हो गई मैं परवान सखी ।।
मन मतवाला कृष्ण प्रेम का, विषयन रस है नाहीं ।
प्रेम गली में घर है कीना, प्रेम लगा है आन सखी ।।
अब तो मनवा कृष्णहि लागा, कृष्णहि मन को भावे ।
कृष्ण बिना सारा जग फीका, कृष्ण ही है मन भान सखी ।।
तीर्थ शिवोम् हे कृष्ण कन्हाई, शरण तुम्हारी आई ।
तुमरे संग ही रास रचाऊं, आई यह मैं मान सखी ।।

(१५५)

आनन्द - राग- नन्द ताल - केहरवा

श्याम ने मन मेरा हर लीनो।
वंशी बजाय रास रचाय, मो अपना कर लीनो ।।
श्याम की किरिया अन्तर परगट, अन्तर नाद सुनाए।
अन्तर खेल करे बहु भान्ति, मो को आनन्द दीनो ।।
वंशी अन्तर निर्मल कर दे, अपना आप दिखाए।
मन के भाव शुद्ध है करती, मो को भी रंग दीनो ।।
मैं तो श्याम तुम्हारी हो गई, जगत पसारा छूटा।
मेरा तेरा भाव मिटा सब, अहं हटा है दीनो ।।
मन में है आनन्द समाया, छलके प्रेम प्याला।
हिरदय में अनुराग विराजे, प्रेम दान मोहे दीनो ।।
तीर्थ शिवोम् मस्त मैं ऐसी, सुध बुध रही न तन की।
श्याम ही श्याम दिखे जग माहीं, श्याम रुप मोहे कीनो ।।

(१५६)

आनन्द- राग - भैरव ताल - कैहरवा

प्रभु प्रेम मन में प्रगटाया।
तृष्णा टूटी आशा भागी, मन आनन्द है छाया ।।
प्रेम से मोरा मनवा झूमत, शोक मोह कछु नाहीं।
प्रेम ही अब सर्वत्र समाना, अंग ही अंग समाया ।।
जाऊं कहां और किस को पूछूं, प्रश्न मेरे मन नाहीं।
अन्तर हिरदय श्याम प्रगट है, मेरे मन है भाया ।।
पी की सेज सुहाना सुख है, प्रभु किरपा मैं पाई।
मन में सुख ही सुख है व्यापे, परमानन्द है पाया ।।
तीर्थ शिवोम् सुखी है मनवा, विषय वासना नाहीं।
मैं और मेरा प्रियतम ही बस, नहीं दूजा कोई आया ।।

(१५७)

राग - पहाड़ी ताल- दादरा

पहाड़ों की रंगत, निराली सुहानी,
नहीं जाए है शोभा जाकी बखानी ।
तरंगित यह नदियां बनी बीच में है,
कि आंखों में बहता हो जैसे यह पानी ।

बिछा दी हो चादर प्रभु हर तरफ है ।
यह कैसी मनोहर यह कैसी छटा है,
नहीं देखी अब तक नहीं हमने जानी ।।

है आता प्रभु याद देखे नजारा,
उसी ने बनाया उसी ने संवारा ।
कहें क्या उसे जो नहीं याद करता,
न देखे है समझे है बनता अजानी ।।

प्रकट रूप ईश्वर का यह ही जगत है,
यदि जीव ने है इसे न बिगाड़ा ।
मगर जीव कहता इसे उन्नति है,
जो उसको पता न, नहीं उसने जानी ।।

है आतम ही सुन्दर है आतम ही प्यारा,
जगत रुप परगट उसी का है सारा ।
जगत देख आतम नहीं याद आता,
नहीं उसने देखी नहीं उसने जानी ।।

है शिवओम् जग भी प्रभु की अदा है,
प्रभु की अदा है कि इच्छा प्रभु की ।
मैं तो कर सकता हूं गुणगान उसका,
जगत जानता हूं प्रभु की निशानी ।।

(१५८)

विविध- राग- हमीर ताल - केहरवा

सेजे सोई साथ पिया के, मन आनन्द समाई ।
भूला जग, बिसरे दुख सारे, सुख अपार है पाई ।।
अन्तर जोती, ज्ञान निरन्तर, परगट होता जाए ।
जैसे सिमटत पास पिया के, निर्मल मनवा जाई ।।
प्रेम पाश है कसता जाए, पी संग एक भई हूं ।
हूं साजन ही जात समाई, नदिया जलधि मिलाई ।।
पिया व्यापक जगत ही माहीं, कर्ता सर्व नियन्ता ।
चहूं दिशा है रुप प्रकाशित, तम अंध्यारा जाई ।।
किरपा पी ने मो पर कीनी, थी तो कुटिल अजाना ।
पर पी प्रेमी दीनदयारा, दीनन प्रीत जगाई ।
तीर्थ शिवोम् हुई किरतारथ, पी ही संग समाई ।
छूटा भ्रम, नाशा संसारा, दुविधा सब ही जाई ।।

(१५६)

विविध- राग – मालकौंस ताल - धुमाली

रात अंध्यारी है सिर पर, सूनापन सब ओर है ।
है हवा ठहरी हुई सी, सूझता नहीं छोर है ।।
पेड़ पत्ते सब खड़े हैं, कोई हिलता तक नहीं ।
न कोई आवाज़ ही है, और नाहीं शोर है ।।
सड़क भी दीखे न कोई, है घना वन ही दिखे ।
आदमी कोई नहीं है, जोड़ नाहीं तोड़ है ।।
पर मेरा मन है तरंगित, बीती यादें उभरती ।
भाव उठते हैं अनेकों, मन न खाए मोड़ है ।।
मैं संभालूं मन को अपने, वह सम्भलता ही नहीं ।
रोकता जितना ही उसको, वह मचाए शोर है ।।
तीर्थ हे शिवोम् गुरुवर, क्या करूं मैं क्या करूं ।
सब तरफ तो शान्ति, पर मन के माहीं शोर है ।।

(१६०)

विविध - राग सारंग ताल - केहरवा

कठिन तपस्या पुण्य कृपा बिन, प्रभु दर्शन न होवे ।
मनवा तो अभिमान में डूबा, जग में ही हर्षावे ।।
कठिन तपस्या निर्मल मनवा, पुण्य ही कर्म कमावे ।
हरि कृपा से होवें परगट, दुविधा सब मिट जावे ।।
मनवा रमा जगत में ऐसा, ओर प्रभु नहीं जावे ।
दुख सुख पावे, संकट पावे, पर न प्रभु ध्यावे ।।
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, काहे जग उलझावे ।
हरि शरण हो, भजन प्रभु कर, भवसागर तर जावे ।।

(१६१)

विविध - राग – आसावरी ताल- केहरवा

प्रभु मन तुम बिन नहीं लागत ।
हारी मैं तो रोकत रोकत, तुमरी ओर ही भागत ।।
मच्छली नीर बिना हो जैसे, बिन बछड़े की गाय ।
वही दशा है मोरे मन की, तुमरी राह ही ताकत ।।
तुमरे बिना नहीं कछु सूझत, जग अंध्यारा दीखत ।
रुप रंग तेरा ही खोजत, तुम में ही मन लागत ।।
तीर्थ शिवोम् हे मेरे सजना, रही पुकारत तोहे ।
आन मिलो भव बंधन काटो, तुम ही को हूं जानत ।।

(१६२)

विविध- राग -आसावरी ताल -केहरवा

निर्गुण ब्रह्म का साधन भक्ति, प्रगटे अन्तर माहीं ।
निर्गुण, माया अन्दर आवे, सगुण कहावे ताहीं ।।
माया अन्दर आय के निर्गुण, माया रहत अछूता ।
माया अन्दर किरिया प्रगट, अन्तर ब्रह्म है नाहीं ।।
जो निर्गुण है सो ही सरगुण, भेद रहे कोई ।
निर्गुण रहत सदा ही निर्गुण, निर्गुण सगुण भी माहीं ।।
निर्गुण का है सकल पसारा, सर्गुण होकर करता ।
माया टूटे निर्गुण निर्गुण, धरत रुप निज माहीं ।।
जाग्रत होकर माया अन्दर, भगति देत जनन को ।
मन निर्मलता करे प्रकाशित, लेत मिलाय है अपने माहीं ।।
तीर्थ शिवोम् हे निर्गुण देवा, माया अन्दर पड़ा जीव हूं ।
सगुण रूप धर विनय हमारी, सुनिए हिरदय माहीं ।।

(१६३)

विविध - राग - मदमाद सारंग ताल- धुमाली

होत निराश तू काहे मनवा, मैं तो दूर न तुमसे ।
तेरे अन्तर प्रकट प्रकाशित, दूर नहीं हूं तुमसे ।।
आंख कान में तेरे बैठा, देखत सुनत भी मैं ही ।
तू न समझे, तू न जाने, दूर नहीं हूं तुमसे ।।
तू ही है भरमाया जग में, भूल गया तू मुझको ।
पर मैं भूलूं कभी तुझे न, दूर नहीं हूं तुमसे ।।
तीर्थ शिवोम् हे भोले मनवा, पास ही राम है तेरे ।
न तू जाने, न पहचाने, दूर नहीं वह तुमसे ।।

(१६४)

विविध - राग - दरबारी ताल- केहरवा

हरि दर्शन सुख देत अमोलक ।
पाप ताप सब ही मिट जावें धनवा मिलता एक अमोलक ।।
दर्शन पहिले होत क्रिया के, जा से मनवा निर्मल होता ।
पीछे चेतन सन्मुख आता, अनुभव होता एक अमोलक ।।
नित्य करे जो दर्शन हरि के, नित्य करे जो भजन प्रभु का ।
नित्य नई ही लीला देखे, लीला प्रभु की एक अमोलक ।।
नाम अनेकों हरि ने धारे, नाम रूप सब ही से न्यारा ।
नाम प्रदान करे हरि अपना, नाम है उसका एक अमोलक ।।
तीर्थ शिवोम् हरि हे प्यारे, किरपा राखो दीन हीन हूं ।
जान न पाऊं नाम रूप मैं, बनया जो है एक अलौकिक ।।

(१६५)

विविध - राग - जन सम्मोहिनी ताल - केहरवा

विट्ठला ! तुम सदा नित्य अविनाशी ।
जब यह जगत किसे न दीखत, तब भी रहत प्रकाशी ।।
स्वर्ग नरक वैकुण्ठ सभी ही, लुप्त कभी हो जाते ।
तुमरा धाम सदा ही, सुन्दरता अविनाशी ।।
प्रकट करो तुम जग को अन्दर, अन्दर धारण करते ।
फिर विलीन अन्तर के माहीं, तुम रहते अविनाशी ।
चरण धूल तुम्हारी करती, पावन दीन जनन को ।
दीन सुशोभित जग में होता, बन जाता अविनाशी ।।
तीर्थ शिवोम् हूं सेवक तेरा, धूली मैं चरनन की ।
शरण तुम्हारी सदा रहूं मैं, पाऊं पद अविनाशी ।।

(१६६)

गुणगान - राग - शुद्ध कल्याण ताल - धुमाली

मंगल है गुणगान प्रभु का ।
मंगलधाम रुप प्रभुताई, मंगल सिमरन नाम प्रभु का ।।
शोक मोह सगले दुख काटे, राम नाम सब संकट नाठे ।
मंगलगान हरि गुण ऐसा, कष्ट हरे है नाम प्रभु का ।।
छोड़ सकल चतुराई अपनी, शरण गहे तू राम हरि की ।
पाप ताप सब ही जल जावें, जाप हरण है नाम प्रभु का ।।
कृपावन्त रघुराई तुम पर, भव सागर वह पार करावे ।
शरण लेत जो नाम हरि की, वत्सल भगत है नाम प्रभु का ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभु सम कोई, दूजा नाहीं अन्य जगत में ।
वह सम एक वही है, वे ही, दीन उधारक नाम प्रभु का ।।

(१६७)

प्रभु दर्शन - राग मिश्र कलावती ताल - केहरवा

तुमको देखा जो प्रभु मैं, देखता ही रह गया ।
जल्वा तेरा जो चमक है, देखता ही रह गया ॥
मुझको अपनी न खबर है, देखता दुनियां नहीं ।
क्या अदा है नूर तेरा, देखता ही रह गया ।।
दुनियां यह रंगीन दीखे, फक्त यह वहम ही है ।
तुम हसीं तुम ही जबीं हो, देखता ही रह गया ।।
दिल नहीं काबू में मेरे, शैदा तुम पर हूं बना ।
सामने मेरे रहो मैं, देखता ही रह गया ।।
मैं तो अब शिवओम् हूं, तेरे ही कदमों में पड़ा ।
करम तेरा ही रहे, मैं देखता ही रह गया ॥

(१६८)

विविध- राग - कामोद ताल - केहरवा

सुनी बजावत बंशी कृष्णा, दूजो नहीं सुहावत ।
बिसर गई सब सुध बुध मोरी, मनवा वहीं रहावत ।।
भूल गई सब पूजा अर्चा, प्रेम लगा मन रहता ।
ऐसी उमड़ी प्रीत है अन्दर, रहत कृष्ण ही गावत ।।
मीठी धुन, मीठा कन्हाई, मीठी ब्रज की गलियां ।
मीठा ही मन मोर भया है, मीठो ही रस आवत ।।
अब तो सभी धुनों में वंशी, वंशी जगत समाया ।
नाचें गोपिन, नाचें ग्वाले, नाचन ही मन भावत ।
काय करूं मैं तान है ऐसी, जीवन बदल दियो है ।
मनवा तो अब लीन भयो है, गीत मधुर है गावत ।।
तीर्थ शिवोम् हे कृष्ण कन्हाई, मै बलिहारी वंशी ।
रहो बजावत रहूं मैं सुनती, जगत न मोहे भावत ।।

(१६९)

विविध - राग - मारू विहाग ताल - भजनी ठेका

हरि मैं परगट तोहे देखा ।
ऊपर नीचे, दायें बायें, आगे पीछे देखा ॥
सकल जगत में तू भरपूरे, दूजा कुछ भी नाहीं ।
तू ही तू है जगत समाया, तेरे बिन न देखा ॥
किरपा गुरु जिन्हें है नाहीं, समझत दूर तुझे हैं।
न ही जान सकें वह तोहे, न ही तुझको देखा ।।
पुरुषारथ से दीखत नाहीं, न ही जप तप कीने ।
गुरु कृपा ही एक उपाय, जिन पाई तिन देखा ॥
तीर्थ शिवोम् गुरु भगवन्ता, क्या गुण गाऊं तेरे ।
तेरी कृपा से निर्मल मनवा, किरपा ही से देखा ।।

(१७०)

विविध - राग - दरबारी कान्हड़ा ताल- केहरवा

मैं प्रेम में पूजा भूल गई, कुछ याद भी मुझको नाहीं रहा ।
कब क्या करना, कुछ क्या कहना, कुछ होश भी मुझको नाहीं रहा ।।
पुस्तक का अब कुछ काम नहीं, नहीं तर्क वितर्क से कुछ लेना।
अब शिष्टाचार भी गौण हुआ, है काम किसी से नाहीं रहा ।।
प्रभु आए मोरे घर माहीं, सत्कार भी करना भूल गई ।
मैं प्रेम मगन ऐसी होई, आओ बैठो भी नाहीं रहा ।।
न जगत से लेना कुछ बाकी, है देना मुझको याद नहीं ।
अब क्या है लेना क्या देना, लेना देना मन नाहीं रहा ।।
प्रभु छोड़ो अब खेंचातानी, चल प्रेम नगर में वास करें ।
यह जगत शिवोम् तो छूट गया, अब भोगों में रस नाहीं रहा ।।

(१७१)

विविध - राग - जीवनपुरी ताल - त्रिताल

श्याम तुम क्यों हो रहे सताए ।
याद तुम्हारी मो को आ के, मेरा मन तड़पाए ।
याद तेरी में क्या है जादू, आए फिर न जाए ॥
याद तेरी मेरे मन आकर, याद तुम्हारी लाए ।
याद तुम्हारी मन में आए, आए फिर तो आए ।।
जब मैं कहती न आवन को, तब तो और भी आए ।
तीर्थ शिवोम् कृपा प्रभु मोरे, याद मुझे भी आए ॥

(१७२)

विविध- राग -गौड़ मल्हार ताल - भजनी ठेका

बरसे अंगना आए बदरवा, भीग गया तन सारा ।
मैं मतवारी झूमन लागी, धुलता पाप पिटारा ।।
अन्तर नाद, प्रकाशा अन्तर, है अन्तर सुख सारा ।
हटा आवरण है सुख झलकाना, मिटा जगत सुख सारा ।।
अब लौं लागी जगत रही है, भोगन ही सुख माना ।
अब अनुभव सुख अजब अनूठा, जा का आर न पारा ।।
गया अंधेरा सूरज चमका, चहुं ओर उजियारा ।
जग का सार प्रकटता अन्दर, माया का विस्तारा ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभु मैं पाया, अन्दर रहत विराजे ।
अब तो पी संग रास रचाऊं, धारा अमिट अपारा ।।

(१७३)

विविध - राग - अड़ाना ताल - दीपचन्दी

तू नहीं समझेगा, क्या करता हूं मैं ।
देखता बस, एक प्रीतम को हूं मैं ।।
रोकता मारग है मेरा क्यों भला ।
पीय ही के घर तरफ, जाता हूं मैं ।।
पीय ही बैठा है अन्दर, दिल मेरे ।
ली झुका गर्दन, दर्श पाता हूं मैं ।।
छुप के बैठा वह, जहां सारे में है ।
उसका ही जल्वा, प्रकट पाता हूं मैं ।।
वह सदा शिवओम् मेरे साथ है ।
हुक्म उसके में, बना रहता हूं मैं ।।

(१७४)

विविध- राग - दरबारी ताल - धुमाली

जब ते दर्शन प्रीतम पाया, इक अजब तरह की मस्ती है।
आंखो में प्रेम छलकता है, अब अलग न अपनी हस्ती है ।।
झलकी जो देखी प्रियतम की, आखों में रहत समाई है।
अब मन में दुख नाहीं कोई, जब हिरदय उसकी बस्ती है ।।
थी मन आखें मुरझाई हुई, तड़पत हिरदय हरदम मेरा।
अब तो है मन आनन्द भरा, जब छाई प्रेम की मस्ती है ।।
जग में सब खोज फिरी उसको, पर नजर न आया कहीं मुझे।
जब मन के अन्दर मैं झांका, तो मन ही उसकी बस्ती है ।।
मैं मन में हूं देखत जब भी, तब पाती प्रियतम अन्तर में।
अब पृथक करे मुझको उससे, ऐसी किसकी अब हस्ती है ।।
प्रियतम अनुराग भरा मन में, हूं तीर्थ शिवोम् सुखी मन में।
अब शोक न मोह न राग मुझे, अब प्रियतम की ही मस्ती है ।।

(१७५)

विविध- राग - हमीर ताल- केहरवा

अन्दर झांक के देखो भाई, अन्दर झांक के देखो।
मन को मोड़ के अन्दर माहीं, अन्दर ही सब देखो ॥
वन पर्वत आकाश है अन्दर, अन्दर सब संसारा।
ब्रह्मा, विष्णु, शंकर अन्दर, अन्दर गणपति देखो ॥
कर्म वासना अन्दर माहीं, अन्दर जगत तुम्हारा।
मन विकार अन्दर ही प्रगटे, अन्दर आनन्द देखो ।।
बाहर जग अन्दर की छाया, केवल दीखे माया।
करता कारण करण है अन्दर, अन्दर झांक के देखो ॥
इड़ा पिंगला सुखमन अन्दर, अन्दर बहती धारा।
साधन भजन तपस्या अन्दर, अन्दर तप के देखो ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो हे संतो, अन्दर ध्यान लगाओ।
अन्दर आतम राम प्रकाशे, अन्दर परगट देखो ॥

(१७६)

विविध - राग - अडाना ताल - केहरवा

सजी संवर के बैठी दुल्हन, पीया के घर जाय रही ।
अन्तर में आनन्द भरा है, प्रीति मन में छाय रही ।।
मेरो दूल्हा छैल छबीला, तीन लोक से न्यारा ।
सदा युवा वह डोलत नाहीं, बात यही मन आय रही ।।
घट घट व्यापी अन्तर्यामी, जनम मरन से परे है ।
ता से मिलता ही सम रुपा, आशा मन में आय रही ।।
छूटी जग की आशा तृष्णा, निर्मल सुंदर मनवा ।
दूर हुई सब माया ममता, थी जो मन को खाय रही ।।
तीर्थ शिवोम् हे सुन्दर सजनी, साजन राह तकत है ।
पी घर जा आनन्द मनाओ, दुनियां तो भरमाय रही ।।

(१७७)

विविध - राग -छाया नट ताल - केहरवा

मैं निरखत हूं श्याम सुन्दर को, श्याम मोहे निरखत है ।
निरखत निरखत हुई बावरी, श्याम सुन्दर न हटत है ।।
अन्तर क्रीड़ा होत निरन्तर, कहन सुनन नहीं आवे ।
श्याम मोहे, मैं श्याम को देखूं, खेल यह अजब चलत है ।।
हरदम श्याम बना सन्मुख है, नैनन दूर न जावे ।
बैठत लीला करत अनेकों, कहत न जाए सकत है ।।
सतिगुरु किरिपा कीनी मो पर, श्याम सुन्दर दिखलाया ।
अब तो श्याम पिया ही दीखत, मन सो नाहीं हटत है ।।
सतिगुरु के बलिहारी जाऊं, अनुभव अजब कराया ।
तीर्थ शिवोम् बंधा मन ऐसा, दूजे जा न सकत है ।।

(१७८)

विविध -राग -माड़ ताल - केहरवा

काल है खावत जीव बेचारा, बच न कोई इससे पावे ।
अपनी बारी, अपनी, इक दिन, छोड़ जगत को जावे ।।
निर्धन धनिक मूढ़ बैरागी, चाहे कितनी कला कमावे ।
काल न छोड़े कैसा भी हो, बारी आए पकड़ लै जावे ।।
मानुष भूला काल गति को, जग में रमकर ही रह जावे ।
पर मृत्यु तो भूलत नाहीं, समय आए यमलोक सिधावे ।।
मिथ्या जग है मिथ्या काया, मिथ्या सगला काज व्यौहारा ।
अलख निरंजन राम मेरा है, वह ही भवजल पार करावे ।।
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, भव जल पार जो जाना चाहे ।
राम भजन ही एक उपाय, जो है नदिया पार लंघावे ।।

(१७९)

विविध - राग - काफी ताल - त्रिताल

गगन मण्डल मुरली धुन बाजे ।
संत करत सेवा प्रभु तोरी, गंग जमन जहां एका ।
जा सेवा सहजे सुख होई, नाद अनाहत गाजे ।।
गोपिन धुन सुन भई बावरी, मुरली टेर सुने जो ।
जा सुन सुन सगले दुख नाठे, मन की मैल है भाजे ।।
तीर्थ शिवोम् गगन में बैठा, सुनत रहा धुन प्यारी ।
मनवा तो उन्मन हुई जावे, सुनत है गाजे बाजे ।।

(१८०)

विविध - राग - जयवन्ती ताल - खेमटा

प्रेम का रूप है मीरा रानी, जगत छुड़ावन मीरा रानी ।
मुक्त करावन मीरा रानी, राह दिखावन मीरा रानी ।।
जग में आकर कष्ट उठाए, माथे शिकन नहीं पर आए ।
मारग प्रेम छुड़ा न पाए, प्रेम स्वरुपी मीरा रानी ।।
मस्त बनी वह प्रभु चरन में, जग सारा ही प्रभु चरन में ।
जो कुछ पाया प्रभु चरन में, करती प्रकट है मीरा रानी ।।
प्रेम निरन्तर हरि से कीना, जनम कर्म सब हरिहि दीना ।
घोट घोट हरि अमृत पीना, जग सिखलाया मीरा रानी ।।
तीर्थ शिवोम् है पांय लागे, सिमरन से मन प्रेम है जागे ।
जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, मीरा रानी ।।

(१८१)

विविध- राग - बागेश्री ताल - भजनी ठेका

नेह मोरा लागा साथ घनश्याम ।
लगा रहे मन प्रीतम साथे, और न दूजो काम ।।
सावन आया, बादर छाए, प्रेम संदेशा लाए ।
पढ़ पढ़ मनवा शीतल होए, आवेंगे घनश्याम ॥
अब तो मन आनन्द भयो है, छलकत नैनन राहीं ।
पल पल देखूं राह पिया का, कब आवें घनश्याम ।।
विरह दिन बीतन को आए, आश पिया की जागी ।
पलक उघारे खड़ी दुआरे, मिलने सुन्दर श्याम ।।
तीर्थ शिवोम् मेरे बनवारी, देर लगाई काहे ।
वेग करो हे प्रीतम प्यारे, आ जाओ घनश्याम ।।

(१८२)

विविध- राग - अहिर भैरव ताल- केहरवा

न चिन्ता, न फिकर मुझको, न दुनियां से गिला मुझको ।
न लेना है न देना है, न मतलब है कोई मुझको ॥
न उलफत है किसी से भी, न गुस्सा है मुझे कोई ।
सभी कल्यान मैं चाहूं, कोई न गैर है मुझको ।।
न खुश हूं मैं अमीरी से, न गम कोई गरीबी से
जो दे भगवान अच्छा है, तसल्ली दिल में है मुझको ।।
मजहब से न कोई मतलब, करुं आदर सभी का मैं ।
निराला पंथ है मेरा, प्रभु प्यारा है बस मुझको ।।
मैं खुश हूं अपने मन में ही, असर मन पह न जग का है।
जगत तो इक तमाशा है, जगत से काम क्या मुझको ।।
कहे शिवओम् ऐ बन्दे, प्रभु से प्रेम पैदा कर ।
है चलती दुनियां ऐसे ही, है पियारा रास्ता मुझको ।।

(१८३)

विविध - राग -यमन कल्याण ताल - दादरा

अब जो जलवा हो गया, दुनियां से लेना क्या भला ।
खुशियां ही अब है शादियां, दुनियां से कहना क्या भला ।।
दीखती दुनियां है बदली सी, मुझे है अब हसीं ।
सारे झगड़े खत्म है, दुनियां में बहना क्या भला ।।
है नहीं रस अब किसी में, है यह सपना दीखता ।
रहते हुए भी हम यहां, दुनियां में रहना क्या भला ।।
अब जो जलवा मैनें देखा, क्या बयां उसका करूं ।
न कोई दूजा है वैसा, मुझको मतलब क्या भला ।।
तीर्थ अब शिवओम् तो है, मस्त मन में हो रहा ।
अब कोई न वासता, दुनियां में रखा क्या भला ।।

(१८४)

ज्ञान – राग- भीम पलास ताल -केहरवा

मरना भला है उसका, जो अपने देश चले ।
छोड़ के सारा जगत पसारा, प्रभु से मेल मिले ।।
जन्म मरन का चक्कर छूटे, दूजी बार न आवे ।
प्रभु से मिलकर प्रभु रुप हो, प्रभु के संग चले ।।
ज्ञानी ऐसे मरण के इच्छुक, संसारी अज्ञानी ।
आवे जग में बारम्बारा, मुक्ति उसे खले ।।
ज्ञानी डरे नहीं मरने से, पार ब्रह्म में जाए ।
धाम प्रभु आनन्द मनावे, जग में नहीं जले ॥
तीर्थ शिवोम् है मरना ऐसा, विरला कोई पावे ।
जग को छोड़ हुआ आनन्दित, धाम की ओर चले ।।

(१८५)

कृष्ण प्रेम - राग - देस जै जैवन्ती ताल - केहरवा

मेरो मन कृष्ण चरण में लागा ।
सोवत जागत कृष्ण ही सूझत, कृष्ण में ही मन पागा ।।
चंदन युक्त शरीर मनोहर, मस्तक तिलक सुशोभे ।
कमर लपेटे पुष्प सुगंधित, ताही प्रेम मन जागा ।।
वर्णी जाय न सुन्दर शोभा, तुलसी माल गले में ।
साथ कामिनी गोपिन दीखें, दृश्य रास का लागा ।।
ठुमक ठुमक पग चाले कृष्णा, छन छन करत पैजनियां ।
मधुर रसीली अधर पह शोभे, मन मुस्कान है लागा ।।
लीला मधुर करे वृन्दावन, गोपिन रास रचाए ।
देखत देखत मैं बलिहारी, मन आनन्द है जागा ।।
तीर्थ शिवोम् हे कृष्ण कन्हाई, तेरी छवि निराली ।

मन में प्रेम रहे चरणों में, जग से रहे विरागा ।।

(१८६)

विविध - राग - विलास खानी तोड़ी ताल - रूपक

घर मैं अपने जा रहा हूं, लोग हैं यह रो रहे ।
भाई बंधु और सब, मिलकर हैं आंखें धो रहे ॥
क्या कहें समझाएं कैसे, नाता बस इतना तो था ।
खत्म जब लेना या देना, जग पराए हो रहे ।।
रो रहे स्वारथ में सब है, पर मैं हंसता जा रहा ।
रेलगाड़ी का सफर था, अब जुदा हैं हो रहे ।।
घर समझ लेता है मानव, जब जहां फानी को है ।
रहता रोता जिंदगी में, रोते रोते जा रहे ॥
अपनी जानिब है न देखे, देखते जग को रहे ।
छोड़ने जब वेल आया, अब रहे पछता रहे ।।
तीर्थ शिवओम् मैं तो, जा रहा हूं जा रहा ।
जिनको है रोना वह रोएं, रोएं आखें खो रहे ।।

(१८७)

विविध- राग -मिश्र जै जैवन्ती ताल – केहरवा

आज मैंने दर्शन हरि का पाया ।
माता वह दीन जनन की, मन आनन्द समाया ॥
अनुपम अलख अनोखा मुख है, देख सके न कोई ।
जिसको चाहे सो ही देखा, गहर गम्भीर दिखाया ॥
सारा जग है ताही अन्दर, अनत है ता विस्तारा ।
देख देख मैं हुआ अचम्भित, पारावार न पाया ।।
साथ सदा ही भक्त जनों के, खाते, जाते, लेटे ।
फिर भी है वह सब से न्यारा, रुप अमोलक पाया ।।
तीर्थ शिवोम् विनय प्रभु आगे, रखियो अपनी शरणीं ।
लगा रहूं चरणों के माहीं, लागे मोह न माया ।।

(१८८)

प्रेम - राग – धानी ताल - धुमाली

जब प्रेम है अन्दर भर जाता, तब मनवा बैरी मर जाता ।
आनन्द ही अनत विराजे है, विषयन मन खाली कर जाता ।।
नैनों से नीर प्रवाहित है, मुखड़ा इक दम है खिला हुआ ।
एड़े - टेढ़े हैं बैन कहें, सारा दुःख प्रेम ही चर जाता ।।
है जाती - पाती छूट गर्द, सब लोग दीवाना कहते हैं ।
है छोड़ गई दुनियां सारी, मुंह दूजी ओर है कर जाता ।।
है धरम - नेम भी छूट गया, पुस्तक भी घर में धरी हुई ।
अब लेना क्या है, क्या, जब जग से मन है भर जाता ।।
अब तो आनन्द समाया है, जग छोटा दीखे है मुझको ।
अब आतम राम प्रकाशित है, भ्रम दूर है सारा हट जाता ।।
है तीर्थ शिवोम् हुआ ऐसा, मन में कोई भी चाह नहीं ।
बस चाह प्रभु के मिलने की, आँखों से जग है हट जाता ।।

(१८९)

प्रेम – राग- काफी ताल- दादरा

मन नाचत है, मन गावत है, मन जग में नही भरमावत है ।
प्रभु प्रेम में ऐसा मस्त हुआ, जग का कुछ याद न आवत है ।।
मन मनहिं लागा मन माहीं, मनहिं प्रभु प्यारा देखत है ।
कोई परवाह नहीं जग की, मनहिं आनन्द मनावत है ।।
मन है मन माहीं समझ गया, कि जग में कोई सार नहीं ।
फिर क्यों उलझे मन भोगों में, विषयों में नाहीं जावत है ।।
अब मन है प्रियतम पास रहे, मन प्रियतम के संग एक हुआ ।
है मन में प्रियतम ही प्रियतम, मन और कहीं न जावत है ।।
मन रहा प्रभु के रंग रंगा, है नहीं उतारे उतरत है ।
मन देखत रहा नजारों को, मन मन में ही सुख पावत है ।।
है तीर्थ शिवोम् मेरा मनवा, अब मनवा वह मनवा नाहीं ।
अब प्रेम बसा मन माहीं है, बस प्रीत की बात ही आवत है ।

(१९०)

विविध - राग - जोग ताल - केहरवा

प्रभु मोहे संतन सेवा दीजो ।
एक यही अभिलाश है मन में, सोई पूरी कीजो ॥
संतन सेवा प्रभुहिं सेवा, भेद न संत प्रभु में ।
दर्शन पाऊं, चरण पखारुं, किरपा ये ही कीजो ॥
संग करुं संतन का निसदिन, श्रवनन राखूं खोले ।
संत सीख मन मोरे लागे, परम अनुग्रह कीजो ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, संतन रहूं मैं चेरा ।
सांस सांस संतन ही सिमरुं, संत मिलन मो दीजो ॥

(१९१)

प्रकीर्ण - राग -गुणकली ताल – केहरवा

सेज पिया की कैसी होगी ।
नित्य मनोहर कैसे होगा, चेतनताई कैसी होगी ।।
क्षण भंगुर यह जग ही देख, जग में नित्य न कुछ भी ।
कैसे कल्पित सेज पिया की, सेज पिया की कैसी होगी ।।
इन्द्रिन की तो गति नहीं है, कैसे समझे भेद पिया का ।
पीव नित्य है, पीव अनन्ता, सेज पिया की कैसी होगी ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो भगवन्ता, सुख पाऊं मैं सेज पिया की ।
जानूं न मैं सेज पिया की, सेज पिया की कैसी होगी ।।

(१९२)

विविध- राग - बागेश्री ताल - केहरवा

उदासीन जो देह गति से, मन में प्रभु प्रेम उपजावे ।

सो ही मानुष संत जगत में, मन विषयन नाहीं उलझावे ।।

संत चरण हिरदय जो धारे, जनम जनम के पाप कटे हैं ।

तृष्णा जाए ममता भागे, जग में सिर ऊंचा रख पावे ।।

जा हिरदय अनुराग भरा है, ता के दर पह पड़ा रहूं मैं ।

इक दिन रीझे प्रीतम प्यारा, दर्शन लाभ तभी हो पावे ।।

तीर्थ शिवोम् है संत जनों की, महिमा जग में अजब निराली ।

आप पिएं औरन को देवें, जो भी निश्छल शरणीं आवे ।।

(१९३)

विविध राग- भुप ताल - केहरवा

मैं तरसूं बदनामी ताई, भला मेरा कुछ होवे ।
दूर मैल हो कुछ तो मन सों, मारग सरल भी होवे ।।
भली होय बदनामी जग में, टूटे गर्व घनेरा ।
भाग्यवन्त ही मो को वह मिलती, तृष्णा लोक की खोवे ।।
हे बदनामी, जय हो तेरी, भला करे भक्तन का ।
तू साची हितकारन ताकी, भक्त जो साचा होवे ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो भगवन्ता, देयो मोहे बदनामी ।
तेरे मारग लगा रहूं मैं, दूर यह माया होवे ।।

(१९४)

विविध - राग - रागेश्री ताल - रूपक

कामना नाहीं सतावें, जो तुम्हारा भक्त हो ।
वासना जागे कभी न, जो तुम्हारा भक्त हो ।।
वह बुरा माने न कुछ भी, चाहे कोई कुछ कहे ।
मित्र भी शुत्र भी नाहीं, जो तुम्हारा भक्त हो ॥
मन में हो अनुराग उसके, मन सदा थिर ही रहे ।
दूर विषयों से रहे वह, जो तुम्हारा भक्त हो ।।
अब तो इच्छा यही, चरणों में हो मन सदा ।
छलकता हो प्रेम मन में, जो तुम्हारा भक्त हो ॥
कर कृपा मेरे प्रभु, हरदम जपूं मैं नाम ही ।
उसके मन में न बुराई, जो तुम्हारा भक्त हो ।।
विनय शिवओम् की, रखना उसे शरणीं सदा ।
न कोई दुनियां हो अपनी, जो तुम्हारा भक्त हो ।।

(१९५)

विविध- राग -भीमपलास ताल - धुमाली

जग जीवन प्रभु राम सुआमी ।
पार ब्रह्म चेतन परमेश्वर, सबका अन्तर्यामी ।।
अन्तर माहीं विराजे प्रभुजी, द्रष्टा कर्ता हर्ता ।
इन्द्रिन देत गति है वो ही, नहीं प्रभावित स्वामी ।।
अंतर्ज्योति रुप प्रकाशित, पार करत है दीन जनों को ।
शरण लेत है जो जन उसकी, करता सहाय सुआमी ।।
राखो लाज प्रभुजी मोरी, गुण अवगुण नाहीं जानूं ।
एक भरोसा तुमरा रघुवर, जगत पान तुम सुआमी ।।
तीर्थ शिवोम् है नीच कुकर्मी, तुम हो दीन दयाला ।
भव जल डूबत जात रहा मैं, नज़र करो हे सुआमी ।।

(१९६)

विविध - राग - मियां मल्हार ताल - धुमाल

कारी बदरिया रिमझिम बरसे, बिजली चमक अकाशे।
मन में तो आनन्द भरा है, सूरज चन्द प्रकाशे।।
अन्तर ज्वाला अगन कुण्ड है, भस्मीभूत करम हैं।
तीनों परदे जात हैं उतरत, तृष्णा सकल विनाशे।।
अब तो प्रेम भरो है मनवा, वीतराग, तम भागा।
तीन गुणन से उच्च अवस्था, अन्तर ज्ञान प्रकाशे।।
तीर्थ शिवोम् है सद्गुरु किरपा, दूर हुआ अंध्यारा।
मन आनन्द है प्रेम समाया, आतम राम प्रकाशे॥

(१९७)

प्रेम - राग - चारुकेशी ताल - धुमाली

जप तप संयम पूजा अर्चन, प्रेम बड़ा है इनसे।
प्रेम से बड़ा प्रेम बस ही है, प्रेम छुड़ावे जिनसे।।
जगत न जाने मर्म प्रेम का, माया रहत है उलझा।
माया से वह भ्रमित है रहता, दुख पावे है इनसे।।
धन जन जौबन गर्व न कीजो, यह सब आवन जावन।
प्रभु प्रेम से विरत हो मानव, पश्चाताप है इनसे।।
तीर्थ शिवोम् मेरे भगवन्ता, प्रेम ही मो को दीजो।
और जगत सब छाया मिथ्या, लागत डर है इनसे।।

(१९८)

विविध - राग - किरवानी ताल केहरवा

हरि का रंग चढ़ा मन माहीं, प्रेम प्रभु का जागा ।
भय भ्रम क्रोध छोड़ मन भागे, वाण प्रीत का लागा ।।
नयनन में हरियाली मस्ती, अंग अंग मुस्काए ।
हिरदय प्याला प्रेम भरा है, भूत जगत का भागा ।।
नाचत गावत उछलत फिरती, लागे सकल सुहाना ।
मन में तो आनन्द भरा है, प्रेम प्रभु मन लागा ।।
नशा चढ़ा है अजब अनूठा, बढ़त बढ़त ही जाए ।
शिखर पिया घर देखूं अब तो, मन में भरा विरागा ।।
तीर्थ शिवोम् पिया रंग राती, दूजा नहीं सुहावे ।
अब तो मैं हूं मेरा प्रियतम, इक दूजे मन लागा ।।

(१९९)

विविध - राग - शुद्ध कल्याण ताल - केहरवा

मेरे घर प्रियतम आए विराजे ।
मगन आनन्द हुई मैं ऐसी, सुखी अमोलक आजे ।।
प्रियतम मेरा गहर गम्भीरा, सुन्दर अनत अपारा ।
मैं तकती रह जाऊं उसको, सभी सवारे काजे ॥
राम मेरा प्रियतम है प्यारा, दूजा उस सा नाहीं ।
सर्व व्यापक होकर स्वामी, मेरे घर में साजे ।।
विष्णुतीर्थ प्रभु तुमरी किरिपा, प्रियतम मैंने पाया ।
सुख ही सुख है अब तो प्रभुजी, प्रियतम का मुख ताके ।।
मुझपर भी उपकार करो प्रभु, तीर्थ शिवोम् शरण में।
प्रियतम प्यारा अन्तर पेखूं, लागा चरणीं आजे ।।

(२००)

विविध राग- धनाश्री ताल - केहरवा

नयनन माहीं आसन तुमरा, लागे दर्शन पाऊं।
आँख मूँद लूं दर्शन पाए, अन्तर ही रस पाऊं।।
रुप सरुप है मधुर मनोहर, जग में सर्व समाना।
हिरदय मोहित योगी जन का, निरख छवि हर्षाऊं।।
तू भक्तन का, भक्त तेरे हैं, करत सभी प्रतिपाला।
दीन दयाला रूप निहारुं, मन तेरा सुख पाऊं।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, व्यापक रूप दिखाओ।
अंग अंग में प्रेम भरा है, मन आनन्द मनाऊं।।

(२०१)

विविध- राग - अल्हैया बिलावल ताल - त्रिताल

अन्तर जैसा सुख नहीं कोई।
अन्तर ज्ञान, सम्पदा अन्तर, अन्तर सा परकाश न कोई।।
लहर लहर सुख अन्तर व्यापे, सुख से भरे हृदय है।
अंग अंग से छलके सुख हैं, अन्तर सम आनन्द न कोई।।
अन्तर आतम, चेतन अन्तर, अन्तर सुख के साधन।
ब्रह्मा, विष्णु, शंकर अन्तर, देव है अन्तर सम न कोई।।
तीर्थ शिवोम् मेरे गुरुदेवा, तुमरा आसन अन्तर।
तुमरी किरपा अन्तर होवे, अन्तर छोड़, कृपा न कोई।।

(२०२)

विविध - राग - सारंग - ताल केहरवा

आज मोरा पीव घरीं आया ।
रस्ता देख रही थी कबका, वापिस दर आया ।।
घरीं आनन्द अनोखा छाया, बाजे बजे बजत निरन्तर ।
झुमक झुमक हो राग रंग हैं, सुख हिरदय छाया ।।
पी मोरा घर सेज समाया, लिया प्रेम लिपटाए ।
जनम जनम की आशा पूरी, मोहे गल लाया ।।
अब मैं हूं और प्यारा सजना, जगत सगल बिसराया ।
शोक मोह मद दूर भये हैं, निपट गई माया ।।
तीर्थ शिवोम् हे प्यारे सजना, अब तजि नाहीं जइयो ।
बहुत दिनन विरहा दुख देखा, जीवन रस आया ।।

(२०३)

विविध- राग - विहाग ताल - भजनी ठेका

प्रेम नगरिया सबसे न्यारी ।
जग तो माया उलझा अन्दर, नगरी परम प्यारी ।।
मधुर मनोहर सुन्दर रस है, भरा आनन्द सुहाना ।
मन में भाव दया करुणा का, सुखी सभी नर नारी ।।
वास करो नगरी में जाए, काहे दुख भोगत हो ।
शीतल मनवा गद् गद् हिरदय, मन आनन्द अपारी ।।
प्रभु कृपा से कोई मानव, गुणधारी बड़भागी ।
या नगरी में जाए सकत है, सुन्दर सजग सुखारी ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, वासा मोहे दीजो ।
सुन्दर नगरी, सुन्दर रहनी, फीकी दुनियां सारी ।।

(२०४)

विविध राग- आसावरी ताल भजनी ठेका

पानी बिन झाड़ पियासा ।
धूप लगे जल जाए पातर, वैसे जीव जगत की आसा ।।
वर्षा आए पानी बरसे, जीवन नया नवीना ।
तब लौं धीरज मन में राखें, तब लौं रहत पियासा ।।
किरपा वर्षा जीव न पाए, सूखा जीवन जाए।
किरपा भई जीव तब भागा, फिर न रहत पियासा ।।
तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, हूं मैं झाड़ सरीखा ।
वर्षा बिन नाहीं हरियाली, रहता सदा पियासा ।।

(२०५)

विविध - राग - कामोद ताल - धुमाली

सुरत सुहागिन भटकत काहे, अन्दर तेरा पीव विराजे ।
अन्दर लीला करत नियारी, अन्तर में ही मेल कराजे ।।
बाहर माया छाया उलझी, बाहर ही खोजे सुख को ।
सुख का दाता अन्दर मेरे, अन्दर ही सब गाजे बाजे ।।
अन्दर झांके अन्दर देखे, अन्दर पी के दर्शन पावे ।
अन्तर ही में सेज पीया की, अन्तर ही घर अपने साजे ।।
अन्तर्दृष्टि जो तू राखे, छूटे जग की मिथ्या माया ।
सिर्जनहार पिया संग नाचे, अन्तर्सुख पाए तू आजे ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो हे सुरती, तोहे पीव बुलाए अन्दर ।
खड़ी दुआर आवत नाहीं, पीय मिलन से क्यों तू भागे ।।

(२०६)

राग - जै जैवन्ती ताल - दीपचन्दी

मैं चला था खोजने उस राम को,
पर मैं रस्ते में उलझ कर रह गया ।
जग की उलझन में ही फंसकर रह गया,
राम तो बैठा किनारे रह गया ।।

अब जगत नाहीं मुझे है छोड़ता,
दे दिखा कर्तव्य का दर्पण मुझे ।
और दिए हीले हजारों ही बना,
राम का तो खोजना ही रह गया ।।

इस तरफ जग फर्ज दिखलाए मुझे,
दूसरा बातें बनाए हैं मुझे ।
क्या करुं न मैं करूं न सूझता,
काठ की पुतली हूं बनकर रह गया ।।

अजब दुविधा में पड़ा हूं इस तरह,
कुछ भी कर पाता नहीं निर्णय रहा ।
यह करूं या वो करूं क्या ठीक है,
राम पाना इक तरफ ही रह गया ।।

राम पाना ही प्रथम कर्तव्य है,
जिस लिए निकला था मन में ठानकर ।
बाकी तो सब गौण है तेरे लिए,
रह गया सो रह गया रह ही गया ।।

शिवओम् रख तू लक्ष्य को मन में सदा,
जिस लिए जीवन गवां तूने दिया ।
अब तो रस्ता साफ तेरा हो गया,
राम पाना एक, मन में रह गया ।।

(२०७)

आनंद-राग - धानी ताल - धुमाली

जब प्रेम है अन्दर भर जाता, तब मनवा बैरी बन जाता।
आनन्द ही अनत विराजे है, विषयन मन खाली कर जाता।।
नैनों से नीर प्रवाहित है, मुखड़ा इक दम है खिला हुआ।
एड़े - टेड़े हैं बैन कहें, सारा दुख प्रेम ही चर जाता।।
है जाति - पाती छूट गई, सब लोग दीवाना कहते हैं।
है छोड़ गई दुनिया सारी, मुंह दूजी ओर है कर जाता।।
है धरम - नेम भी छूट गया, पुस्तक भी घर में धरी हुई।
अब लेना क्या है देना क्या, जब जग से मन है भर जाता।।
अब तो आनन्द समाया है, जग छोटा दीखे है मुझको।
अब आतम राम प्रकाशित है, भ्रम दूर है सारा हट जाता॥
है तीर्थ शिवोम् हुआ ऐसा, मन में कोई भी चाह नहीं।
बस चाह प्रभु के मिलने की, आँखों से जग है हट जाता।।

(२०८)

प्रकीर्ण- राग - कल्याण ताल - केहरवा

प्रभु मिलने का मौसम आ गया है।
सभी कुछ छोड़कर अब तो चलो जी, कि छुटकारे का मौसम आ गया है॥
रहा तू अब तलक, कैदी जहां का, खुले में सांस तक तुझको मिला न।
गुज़ारी उम्र तूने ही तड़पते, पर अब चहचहाने का ही मौसम आ गया है।
तुझे मालूम न थी अपनी ताकत, कि तू सारे जहां पह एक कामिल।
रहा दबता तू बस मजबूरियों से, कि ताकत अब दिखाने का यह मौसम आ गया॥
प्रभु हरदम है तेरे साथ रहता, मगर भूला फिरा अपने प्रभु को।
रहा उलझा ही तू फानी जहां में, प्रभु पहचानने का अब यह मौसम आ गया॥
रहा तीरथ ही यह शिवओम् कहता, कि आतम है तू जग से है न्यारा।
तुझे कैदी बना सकता न कोई, कि खुशियां ही मनाने का यह मौसम आ गया॥

(२०९)

आनन्द - राग - कलावती ताल - धुमाली

प्रभु नैनन माहीं छुपाय लियो ।
हरि को नयनन माहीं बिठाय, जग को दूर हटाय दियो ।।
प्रभु के बिना नहीं कुछ दीखत, जग भी हरि ही देखूं ।
मेरे हरि के बीच न कोई, ता को ही अपनाय लियो ॥
इच्छा प्रभु ने पूरी कीनी, अपना रूप दिखाया ।
रुप दिखा अखियन में बैठा, परदा नयन गिराय लियो ॥
अब तो अन्तर्ज्योति जागी, जगत भाव बिसराया ।
अन्तर में आनन्द समायो, दुख को मार भगाय दियो ।।
प्रेम समाया अन्तर ऐसा, द्वेष किसी से नाहीं ।
प्रभु बिना है नाहीं दूजा, भाव यही अपनाय लियो ॥
तीर्थ शिवोम् सुनो प्रभु मोरे, लगी रहूं चरणों में ।
ऐसा सुख निरन्तर दीजे, रुप तेरा मन भाय लियो ।।

(२१०)

आनन्द – राग- खंबावती ताल - धुमाली

राम ही मेरा प्रियतम प्यारा ।
राम बसत है हिरदय माहीं, राम मेरा रखवारा ।।
राम से नेह लगा है मन में, बढ़त रहत दिन राती ।
जहां देखूं वहां राम विराजे, राम ही सिरजनहारा ।।
राम ही बंधु, राम पति है, राम ही सब कुछ मेरा ।
राम बिना पल भर न बीते, राम मेरा आधारा ।।
राम नाम मेरा मन माहीं, चलत है नित्य निरन्तर ।
ऊठत बैठत राम जपूं मैं, रामहि करत विचारा ।।
राम प्रभु पत राखो मेरी, दासी हूं मैं तेरी ।
तुम बिन कोई नाहीं अपना, केवल राम हमारा ।।
किरपा राम बनाए राखो, तीर्थ शिवोम् शरण में ।
जुड़ी रहूं मैं तुमरे साथे, प्रेम हृदय अविकारा ।।

(२११)

आनन्द -राग - कामोद ताल - केहरवा

कृष्ण चरण मन लागा ।
कृष्ण बसा है मन के माहीं, अन्तर्मन में जागा ।।
कृष्ण ही दीखत, कृष्ण सुनत मैं, कृष्ण ही सर्व समाया ।
कृष्ण रुप ही सारा जग है, कृष्ण चरण मन पागा ।।
कृष्ण की वंशी नाद करत है, मधुर अति मन मोहक ।
गोपिन सारी नाद बंधी है, वंशी मे मन लागा ।।
हिरदय कोमल माखन नाईं, कृष्ण है लेत चुराय ।
मन में तब बस कृष्ण बसे हैं, कृष्ण में ही मन लागा ।।
काय करुं सुध आवत नाहीं, कृष्ण चरण में जाए ।
सुख तो कृष्ण चरण के माहीं, चरणों मे मन लागा ।।
तीर्थ शिवोम् हे कृष्ण कन्हाई, शरण तुम्हारी आई ।
शरण में राखो चरण पड़ी हूं, तुम में ही मन लागा ।।

(२१२)

आनन्द - राग - कलिंगड़ा ताल - केहरवा

मैं तो कृष्ण ही कृष्ण पुकारूं ।
कृष्ण का ध्यान ही धारुं मन में, कृष्ण का नाम उचारुं ।।
मन तो मोरा कृष्ण में लागा, दूजा नाहीं भावे ।
जग से लेना देना क्या है, कृष्ण ही मन में धारुं ।।
कृष्ण की लीला, कृष्ण की मुरली, मन में प्रेम भरे है ।
ताही लागा है मन मोरा, मैं गुण नाम विचारुं ।।
मन में, तन में कृष्ण समाया, कृष्ण ही घट घट व्यापे ।
मैं मतवारी प्रेम कृष्ण की, ता पर मन मैं वारुं ।।
कृष्ण करत उद्धार जगत का, सागर पार करावे ।
दीन दयाला कृष्ण गोपाला, कृष्ण ही कृष्ण उचारुं ।।
तीर्थ शिवोम् हे कृष्ण कन्हाई, किरपा मो पर राखो ।
तेरा प्रेम मेरे मन माहीं, हृदय भाव को धारुं ।।

(२१३)

माया- राग- भूप ताल- दादरा

जगत के परवाह में, बहता रहा बहता रहा ।
पर किनारा न मिला, बहता रहा बहता रहा ।।
आर है न पार कोई, यह जगत ऐसा बना ।
फिर किनारा क्यों मिले, बहता रहा बहता रहा ।।
राम तो दिखे कहीं न, बस जगत ही दिखता ।
मैं उलझता ही रहा, बहता रहा बहता रहा ।।
यह भयानक जगत नदिया, पार करना कठिन है ।
कोई न मल्लाह भी, बहता रहा बहता रहा ।।
नजर आए न किनारा, है जहां तक दीखता ।
मैं रहा बहता गया, बहता रहा बहता रहा ।।
तीर्थ हे शिव ओम् मालिक, तू बचावन हार है ।
मैं तो बच पाया नहीं, बहता रहा बहता रहा ।।

(२१४)

माया- राग - भैरवी ताल - केहरवा

जलवा अपना देख के काया, रही भ्रमित है जग में।
यह मद मिथ्या माया केवल, अर्थ नहीं कुछ जग में ।।
काया जल तंरग की भान्ति प्रकटे बैठत जाए ।
छिन भर में तू लीन भएगी, दिखे कहीं न जग में ।।
तू न जानत सुख का मारग, वह तो अन्तर माही ।
तू तो भरम भुलानी काया, सुख है नाहीं जग में ।।
तीर्थ शिवोम् सुनो हे काया, करत गुमान तू काहे ।
पल भर में मृत्यु आ धमके, उठ जाएगी जग में ।।

(२१५)

माया- राग पीलू - ताल - केहरवा

ज्यों नीला आकाश दिखे है, पर यह केवल माया ।
जगत बनाया जैसे सपना, जीव रहा भरमाया ।।
चेतनताई जग के माहीं, पर जड़ता है छाई ।
चेतन बिना नहीं है किरिया, जीव रहा उलझाया ।।
मीठा लगे, सुन्दर दीखे, अपनी ओर है खेंचे ।
पर है केवल भासित होता, सब को नाच नचाया ।।
कैसा खेल रचाया तूने, कैसी तेरी माया ।
जो देखे सो ही पछताया, न देखे पछताया ।।
जग से बचना बहुत कठिन है, योगी ज्ञानी ध्यानी ।
लेत जो जन है शरण प्रभु की, वह ही है बच पाया ।।
तीर्थ शिवोम् हे मूरख मनवा, क्यों इसमें भरमाया ।
जो लागा है जगत विषय में, वह ही है अकुलाया ।।

(२१६)

माया- राग- तोड़ी ताल - रूपक

जग तरंगित लोभ से है, मैं हूं डूबा जा रहा ।
जगत में आसक्त ऐसा, भूलता प्रभु जा रहा ।।
फस रहा तूफान में हूं, ढब न निकलन का कोई ।
तू ही आए, तू बचाए, जल उतरता जा रहा ।।
कैसे खोजूं, कैसे पाऊं, ज्ञान परले पार का ।
सूझता मुझको नहीं कुछ, गरक हो जा रहा ।।
सद्गुरु ही एक मारग, जो दिखाए रास्ता ।
मैं भूला, हूं भटका, उलझता ही जा रहा ।।
तीर्थ हे शिवओम् अब, मुझको सहारा दीजिए ।
बिन सहारे पार कैसे, टूटता मैं जा रहा ।।

(२१७)

माया- राग -भीम पलासी ताल - केहरवा

माया तू क्या खेल रचाया।

कुछ का कुछ कर जगत दिखया, भ्रमित जीव उलझाया।

दृश्य दिखाये, मधुर मनोहर, मन को मीठे लागे।

भूला फिरत जीव बेचारा, काहे को भरमाया।।

कहन सुनन में जो न आवे, सो तूने कर दीना।

केसे किया दिखाया तूने, अजब तेरी है माया।।

मैं देखूं देखत रह जाऊं, समझ न पाऊं कुछ भी।

तेरी लीला तू ही जाने, जान कोई न पाया।।

स्वांग धरे और रुप बनाए, कौतुक अजब कराए।

मनवा हुआ प्रभावित इनसे, निकल नहीं फिर पाया।।

तीर्थ शिवोम् हे मेरे मनवा, बचता रह माया से।

धोके बाज अनूठी डाकिन, संभल न कोई पाया।।

(२१८)

माया- राग - भीम पलासी ताल - केहरवा

माया क्या क्या रंग दिखाए।

सुख को दुख, दुख को सुख कीना, क्या क्या खेल रचाए।।

प्रीतम प्यारा जीव भुलाना, रमा तुझी में ऐसा।

जग के रंग सभी भरमाए, प्रीतम नजर न आए।।

विषय लुभाने कीने तूने, जीव के सन्मुख कीने।

मनवा तो विषयन में लागा, भोगन में रम जाए।।

तीर्थ शिवोम् प्रभुजी मोरे, माया नाच नचावए।

प्रीत जगे चरणों के माहीं, मन माया न जाए।।

(२१६)

माया -राग - जीवन पुरी ताल - धुमाली

अब तक नचाया तूने, अब छोड़ पीछा माया ।
घर को तू जा चली, अब तक तो है सताया ।।
कौतुक किए अनेकों, जग को बहुत रुलाया ।
जो था नहीं दिखाया, मन जीव का भ्रमाया ।।
तूने दिखाया सुख ही, कीना जगत दुखी है ।
जग को सता मिला क्या, कोई न समझ पाया ।।
तू ही जगत बनी है, तू काल बन के बैठी ।
फिर घेरती जगत को, आवागमन फसाया ॥
हम हाथ तेरे जोड़े, अब कर कृपा हे माया ।
दुख देगी कब तलक तू, सब कोई भर है पाया ।।
शिवओम् तीर्थ मांगे, माता करो दया अब ।
बालक तो मैं हूं तेरा, माथा तुझे नवाया ।।

.

N